नव भारत के

चंद

निर्माता

लेखक

काका साहब कालेलकर

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

प्रकाशक

जयकृष्ण अग्रवाल

कृष्णा ब्रदर्स,

कचहरी रोड, अजमेर

मूल्य रुपये [illegible]·०

मुद्रक :

उद्योग शाला प्रिंटिंग प्रेस,

किंग्सवे कैम्प दिल्ली ९

नव-निर्मालाओं को श्रद्धांजलि

सप्तखंडा[1] वसुन्धरामे बसने वाली मानव जाति ने, अथवा मानव वशो ने, जिन अलग-अलग सस्कृतियो का विकास किया अुनमे भारतीय संस्कृति को भी महत्व का स्थान है। अगर हमने अपनी राजनैतिक अेकता और स्वतन्त्रता का पूरा ख्याल हमेशा जाग्रत रखा होता तो हमारी सस्कृति जागतिक सस्कृतियो मे सर्वश्रेष्ठ साबित हुअी होती, हम लोगो ने गृह-अुद्योग, ग्राम-अुद्योग आदि तरह तरह की कलाअे, साहित्य, सगीत, धर्म और अध्यात्म मे लोकोत्तर प्रगति की, लेकिन राजनैतिक सगठन के बारे मे हमारी सस्कृति आजतक गफलत मे ही रही। हमारी राष्ट्रीय अेकता, राजसूय यज्ञ करने वाले बिरले प्रतापी सम्राट के जीवन काल तक ही कायम रही। सामान्य तौर पर छोटे छोटे स्थानिक राज्य चलाकर ही हम रहे सतुष्ट, अिसी लिये पठान, मुगल, पोर्चुगीज, फ्रेंच, डच, अग्रेज आदि जो भी विदेशी लोग यहाँ आये अुनको, यहाँ काफी रहने के बाद, और तिजारत करके धनी होने के बाद, विश्वास हो गया कि यहाँ के लोगो की ही मदद से हम यहाँ राज्य कर सकते है।

अिनमे भी मुगल वश के लोग और ब्रिटन के अग्रेज, यहाँ साम्राज्य चलाने की महत्त्वाकाक्षा रख सके और हम लोगो ने अुनकी, अुस महत्त्वाकाक्षा को सफल करने मे जी-जान से मदद की। यह है हमारे पिछले डेढ हजार वर्ष का अितिहास।

---

१. (१) अेशिया (२) यूरोप (३) ऑफ्रिका (४) अुत्तर अमेरिका (५) दक्षिण अमेरिका (६) ऑस्ट्रेलेशिया और (७) प्रशांत ओशियानिया

अिनमे भी अेक छोटे से टापू मे रहने वाले दरियावर्दी अग्रेज लोगो ने साम्राज्य-सगठन की विद्याकला पूर्णरूप से हस्तगत की। और अुन्होने अपने साम्राज्य के द्वारा भारत के लिये अेक नयी ही अेकता स्थापित की।

अिस ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध, अुनके माडलिक भारतीय राजाओ ने और अुनकी फौज के देशी सिपाहियो ने भारत को आज़ाद करने की कोशिश सन १८५७ मे कर देखी। फलत हमी लोगो ने अग्रेजो की ब्रिटिश सत्ता यहाँ पर अद्भुत ढग से मजबूत की। और भारत के लिये आशा का कोअी चिह्न न रहा।

अैसी कृष्ण-रात्रीके समय भारतीय सस्कृति ने अपने प्राण की पहचान कर, नवजीवन प्रगट करने का सकल्प किया। और तीस वर्ष के अदर नवभारत का यह नया प्राण आत्मविश्वास से साँस लेने लगा।

तबसे लेकर भारत स्वतत्र हुआ, और अुसने स्वदेशी या विदेशी राजाओ का नही, किन्तु यहाँ की बहुवशी, बहुधर्मी, बहुभाषी प्रजा के हृदय मे स्वतत्रता और अेकता का प्राण फूककर यहाँ प्रजाराज्य स्थापित किया। साठ या पचहत्तर वर्षों का (याने पाच छ तपो का) भारत का यह अितिहास जिन नेताओ के प्रभाव से अनुप्राणित हुआ, अुन राष्ट्रपुरुषो का, और युगपुरुषो के जीवन-कार्य का यत् किंचित् चिंतन अिस छोटे से निबध-सग्रह मे पाठको को मिलेगा।

यहाँ पर प्रतिनिधि रूप सात ही युगपुरुषो के सास्कृतिक पुरुषार्थ का चिंतन आप को मिलेगा। अिनके अदर अिन्ही के जैसे अन्य राष्ट्र पुरुषो की सेवा का भी अतर्भाव हो जाता है। नवभारत के ये निर्माता केवल अपने जीवन के और अपने सेवा-कार्य के प्रतिनिधि नही है। वीरेश्वर स्वामी विवेकानद का नाम लेते ही अुनके पूर्वगामी राजा राम-मोहन राय, केशवचद्र सेन, अीश्वरचद्र विद्यासागर आदि सब राष्ट्रपुरुष आ जाते है। यही नियम यहाँ के राष्ट्रमूर्ति-सप्तक मे से हर अेक के बारे मे लागू हो सकता है।

भारतीयो की हिंदू सस्कृति की कमजोरियाँ पहचान कर जब अिस्लामी लोगो ने अपना राज्य यहाँ पर जमाया तब जाकर हम लोगो ने अरबस्तान और अीरान की ओर ध्यान दिया। वहाँ की भाषा सीख ली। और अिन दोनो भाषाओ के साहित्य के द्वारा अुनकी सस्कृतियो का हार्द हमने पकड लिया।

यही बात अीसाअी धर्म और पश्चिमी सस्कृति के बारे मे हमारे यहाँ हुअी। अिस्लामी और अीसाअीयत दोनो का अेकेश्वरी आग्रह समझ करके हमारे चद नेताओ ने अुसी अेकेश्वरी विचारो का सार्वभौम बीज भारतीय सस्कृति मे पाया। और वेदान्त के साथ अिस्लामी और अिसाअी सस्कृतियो का समन्वय करके ब्राह्म समाज की स्थापना की। राजा राम-मोहन राय ने अिसलाम की और विशेप ध्यान दिया होगा। केशवचद्र अीसाअियत का महत्व पहचाना होगा। अीश्वरचद्र ने अैतिहासिक और सेन ने सामाजिक वायुमडल को सजीवन किया होगा। लेकिन पूर्व और पश्चिम का समन्वय किये बिना सारे राष्ट्र मे प्राण का स्पदन नही हो सकेगा, अितना तो अुन्हो ने देख ही लिया।

जिन दिनो बंगाल मे ब्रह्म-समाज की स्थापना हुअी, अुसी समय पश्चिम भारत मे, बम्बअी की ओर, प्रार्थना-समाज की स्थापना हुअी। और गुजरात के ही अेक सन्यासी ने भारतीय-सस्कृति के अुगम रूप वेदो को प्रधानता देकर आर्य समाज के द्वारा समाज सुधार का काम पजाब तक फैलाया।

यह नवजीवन और यह नवसस्कृति मध्यकालीन ढग से छोटे-बडे राजाओ पर और सैन्य पर आधार रखनेवाली नही थी। नवभारत को अब की बार प्रजाकीय जागृति और सास्कृतिक नवनिर्माण करना था।

अिन सारे प्राणतत्त्वो का समन्वय वीरेश्वर स्वामी विवेकानद मे हम पाते है।

युद्धविद्या का अेक नियम है कि आत्मरक्षा करनी हो तो अपने दरवाजे बद कर के शहर की दीवारो की रक्षा मत करो। शत्रु के मथको पर हमला करना, यही है आत्मरक्षा का अुत्तम अुपाय'।

स्वामी विवेकानद ने भारतीय सस्कृति का बचाव करने की नीति छोड कर भारतीय सस्कृति का प्राण जिसमे है अैसी वेदान्त-विद्या का सदेश लेकर वे 'पश्चिमी यूरोप के भी पश्चिम की ओर' अमेरिका गये। और वहाँ सन् १८९३ मे अुन्होने वहाँ की विश्व-धर्म-परिषद मे वेदान्त की दुदुभी बजायी और पश्चिमी मानव को समझाया कि 'आप और हम सब अमृत के पुत्र है। जीव को शिव बने बिना सतोप नही होता। हमे अब प्राणोपासक बनना है और आप लोगो को ब्रह्मोपासक बने बिना चारा ही नही।"

स्वामी विवेकानद ने जो नगारे अमेरिका मे बजाये अुसकी प्रतिध्वनि भारत के हृदय मे जोरो से अुठी और नवभारत मे आत्मविश्वास का और आत्म परिचय का जन्म हुआ।

अिसके कुछ पहले सन १८८५ मे सारे राष्ट्र के राजनैतिक नेताओ ने भारतीय राष्ट्र को अेक-हृदय करनेवाली राष्ट्रीय कोग्रेस की स्थापना की। अिसका मुख्य कार्य हिन्दू, पारसी, यहूदी, अीसाअी, मुसलमान आदि विविध धर्मी भारतीयो मे 'हम अेक-राष्ट्र हैं' यह भावना मजबूत करने का था। और जो भी करेगे अेक-हृदय होकर सर्वानुमति से करेंगे, यह हो गयी अुनकी नीति।

अिस कोग्रेस के काम को केवल 'बडे दिनो का तमाशा' मानकर छोड दिया जाता था अुसका काम आजन्म सेवको के द्वारा सतत करते रहने का सकल्प किया, भारत-सेवक गोपाल कृष्ण गोखले ने। अिन्हो ने अग्रेजो की विद्या मे प्रवीण होकर भारत की माग राज्यकर्ताओ के सामने पेश करने का काम तो किया ही। लेकिन अुनकी मुख्य सेवा तो 'धर्म-निरपेक्ष आजन्म सेवा, करने वाले सेवको का अेक मण्डल तैयार करने

की थी। कोंग्रेस के सदेश को राष्ट्र के जीवन मे बोने का प्रारभ गोखले की सर्वेन्ट्स ओफ अिन्डिया सोसायटी ने किया।

अिधर राज्यकर्ताओ की भाषा, अुनकी राज्य-प्रणाली, अुनकी शिक्षा और अुनका सार्वभौम नेतृत्व, अिन चीजो की मोहिनी हटाकर, जनताकी भाषा, जनताकी जागृति, जनताकी सस्कृति, अिन्ही के द्वारा आत्म विश्वास पैदा करने वाले स्वराज्य-अृषि लोकमान्य तिलक ने जनता-जागृति का काम किया। राजमान्यता का अनादर करके लोक-जीवन को सजीवन करने का यह काम जिन्होने निडर आत्मविश्वास से किया अुनको जनता ने 'लोकमान्य' की अुपाधि दी। आज 'लोक-मान्य' कहते पूना के बाल गगाधर तिलक का ही बोध होता है। लोक-मान्य तिलक ने देश को श्री कृष्णका कर्मयोग सिखाया और हिंदूधर्म मे व्यापक राष्ट्रीयता का प्राण सचार कराया।

अुधर बगाल मे ब्रह्म समाज के सास्कृतिक अुत्तराधिकारी महर्षि देवेन्द्र नाथ के सुयोग्य पुत्र ने काव्य, साहित्य, कला और शिक्षा के द्वारा भारतीय अध्यात्म का सदेश प्रथम स्थानिक लोक-भाषा द्वारा बगाल को सुनाया और बाद मे भारत की सार्वभौम और चिरतन मानवता सारे विश्व के सामने अग्रेजी के द्वारा रखी। कविवर रवीन्द्रनाथ का सारा सदेश और जीवनकार्य अुनकी अेक कविता मे मुखरित हो अुठा है —

> हे मोर चित्त पुण्यतीर्थे जागो रे धीरे।
> अेअि भारतेर महामानवेर सागर-तीरे॥

अिस गीत को तो मैं भारतीय-सस्कृति का राष्ट्रगीत मानता हूँ रवीन्द्र ने ही भारत को उसका राष्ट्रगीत दिया है--जन-गण-मन-अधि-नायक जय हे! के रूप मे।

विश्व हृदय ने भारतीय-अध्यात्म का प्राणतत्त्व पाया कवि की गीता-जली और नैवेद्यमे भारत की 'सास्कृतिक साधना' का स्वरूप उसी साधना

नाम के सास्कृतिक ग्रथ के द्वारा पाया। रवीन्द्रनाथ की भारत-सेवा तो हम अुनके शान्तिनिकेतन और विश्व भारत मे कृतज्ञता पूर्वक देख सकते है।

रवीन्द्र नाथ की यह भव्य सेवा याद करके अुन्हे अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते मैंने अेक किताब 'युगमूर्ति रवीन्द्रनाथ' हिंदी जगत को दी है। अुसी मे से दो निबन्ध यहाँ लेकर मैंने सतोष माना है।

जिस साल और जिस महीने मे राष्ट्रीय काँग्रेस का जन्म हुआ उसी समय नवभारत के अेक बिलकुल सामान्य प्रतिनिधि का अिस ग्रथ के लेखक का, जन्म हुआ। उस ने भारतीय सतो से जो भक्ति पायी अुसी को बुद्धिवाद की कसौटी पर कसके भविष्य का रास्ता ढूँढते स्वामी विवेकानन्द से वेद की प्रेरणा पायी राष्ट्रसेवा का महत्व गोखले जी के जीवन से समझ लिया और जीवन का प्रारभिक बडा हिस्सा लोकमान्य तिलक के क्रातिकार्य मे अर्पण किया।

हमारे जमाने के हम नवयुवक लोकमान्य तिलक की प्रेरणा के दो विभाग करते थे। अेक था, अग्रेजो से स्वराज्य मागने वाली कोग्रेस को जाहिरा तौरपर तेजस्वी बनाने का। दूसरा कार्य था, अग्रेजो का राज्य तोडने के लिये, गुलामी से असतुष्ट लोगो को गुप्त रूप से सगठित करने का। हमारे मनमे तिलक के प्रगट कार्य का महत्व उतना नही था, जितना गुप्त क्रानिकारी काम का था। लोकमान्य तिलक सामाजिक सुधार की ओर पूरा ध्यान नही देते है यही हमारे मनमे बडा ही असतोष रहता था। अिसी लिए हम लोग बालगगाधर तिलक के साथ पजाबके लाला लाजपतराय को और बगाल के बिपिन चद्र पाल को लेकर सतोष मानते थे। और लाल, बाल, पाल वाली त्रिमूर्त्ति की अपने हृदय मे पूजा करते थे।

अितने मे हमे अिनसे बढ कर अेक अत्यत तेजस्वी पूर्ण क्रातिकारी नेता मिले, श्री अरविन्द घोष। हम क्रातिकारियो के वे सर्वांग सुंदर

नेता बन गये। बड़ौदे से कलकत्ता जाकर अुन्होने हम युवको मे जो प्राण डाला अुसमे हम क्रातिवादी पूर्णरूप से प्राणित हुअे। बडौदा और कलकत्ता से काम करने वाले श्री अरविंद घोष मानो अलग और कलकत्ते से गुप्त होकर पोडिचेरी मे प्रगट होने वाले महायोगीराज श्री अरविंद अलग और पूज्य।

जिस तरह मैने श्री रवीन्द्र नाथ को अेक किताब के रूप मे अपनी श्रद्धाजली अर्पण की वैसी ही श्री अरविद को भी अर्पित करने का सकल्प है। अिसी लिये यहाँ पर श्री अरविंद को य द करने वाला अेक ही निबन्ध लिया है।

अिस के बाद आते है युगमूर्ति महात्मा गाधी और विश्वशान्ति के अुपासक भारतमूर्ति जवाहर लाल नेहरू। अिनमे से महात्मा गाधी जी को तो मेने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया अिस लिये अुनके बारे मे अिस प्रास्ताविक पुरोवचन मे विशेष लिखने की आवश्यकता नही है।

और गाधीजी से प्रेरणा पाकर स्वराज्य पाने का और स्वराज्य चलाने का अपना तेजस्वी कौशल्य बताने वाले श्री जवाहर लाल जी तो हम असख्य साथियो के अगुआ। सारा भारत जवाहरलाल जी को प्रजाराज्य स्वराज्य के प्रधान और सर्वोत्तम नेता के रूप मे पहचानते है। जवाहरलाल जी की सार्वभौम सेवा सब जानते ही है। उनकी अेक मात्र चिंता थी भारत की भावनात्मक अेकता को मजबूत करने के बारे मे, और विश्व की मानवता को बचाने के बारे मे तथा विश्वशाति का वायुमडल दुनिया के सब राष्ट्रो मे पैदा करने के बारे मे।

अिस तरह नवभारत के असख्य निर्माताओ के सात प्रतिनिधियो को अपनी नम्र किन्तु हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पण करते मैं अपनेको धन्य मानता हूँ।

महावीर जयती
अप्रैल १९७१
नअी दिल्ली

— काका कालेलकर

पुनश्च

मैंने तो अिन सब राष्ट्रपुरुषो के बारे मे समय-समयपर अनेक लेख लिखे थे। उनमे से अिन सात नाम पसद करके हरअेक के बारे मे मेरे लेखो मे से थोडे थोडे लेख पसद करने का काम मेरे तरुण स्नेही और साथी रवीन्द्र केलेकर ने किया है। अिस पुस्तक के सपादक वे ही है। वे मेरे विचार, मेरी कार्यपद्धति और मेरे हृदय को पहचानते है। अिस वास्ते मैंने अुनको मेरे साहित्य को पढ कर अुसमे से, अैसी किताबे तैयार करने का काम सौपा है। उनके काम से मुझे सतोष है। पाठको मे मेरी विनती है कि अिस ग्रथ मे 'नव-भारत के निर्माताओ' के बारे मे पढ कर अुनको कुछ सतोप मिला हो, और भारतीय-सस्कृति की सेवा करने की प्रेरणा मिली हो, तो वे रवीन्द्र केलेकर को धन्यवाद दे। और ऐसा ही काम करने के लिये अुन्हे प्रोत्साहन दे।

मै तो अिस लोक का अपना काम यथाशक्ति करते करते परलोक की तैयारी करना चाहता हूँ। अपने पाठको से मेरी अुस नयी यात्रा के लिये यही शब्द मै सुनना चाहता हू—

शिवास्ते सन्तु पथानः

विषय-सूची

१

स्वामी विवेकानन्द

और

सुधारक हिन्दू धर्म

नमः परम ऋषिभ्यः

लोकमान्य तिलक ने स्वामी विवेकानन्द की कदर करते हुवे अुन को 'देशभक्त सन्त' The patriotic saint of India कहा था। लोकमान्य के ये शब्द अुन दिनो सारे राष्ट्र को प्यारे लगे थे। और अग्रेजी बोलनेवाले भारतीयो की जबान पर खेलते थे। स्वामी विवेकानन्द के हृदय मे भारत के प्रति असीम प्रेम था। भारत की अुज्ज्वल आध्यात्मिक सस्कृति के वे तेजस्वी प्रतिनिधि थे। अिसीलिये अुन का हृदय मानवव्यापी था, विश्वव्यापी था। वे थे भारत के अिस युग के अध्यात्मवीर।

स्वामी विवेकानन्द को दुनिया ने और देश ने तब पहचाना जब अुन्होने अमेरिका जाकर शिकागो की सन् १८९३ की विश्वधर्म-परिषद् मे सच्चे विश्वधर्म वेदान्त का नगाडा बजाया। अमेरिका के लिअे सचमुच यह अेक नया सन्देश था कि 'मनुष्यमात्र अमृत का पुत्र है और मनुष्य को आखिरकार अीश्वर ही बनना है'। स्वामीजी अमेरिका से लौटते समय फ्रान्स, ब्रिटेन आदि देश देखकर भारत आये। कोलम्बो से लेकर अल्मोडा तक अुन्होने जो प्रवास किया वह मानो अेक दिग्विजय की ही यात्रा थी।

सन् १८५७ के बाद राष्ट्र मे जो मायूसी फैली हुअी थी और राष्ट्र

ने जो आत्मगौरव खोया था अुस मानसिक ग्लानि को दूर करके आत्म-विश्वास, स्वाभिमान, निर्भयता, त्याग, वैराग्य और नि स्वार्थ सेवा का आदर्श स्वामीजी ने ही पहले पहल भारत के सामने रखा। रामकृष्ण परमहस के चरणो मे बैठकर जो आध्यात्मिक प्रेरणा स्वामीजी ने और अुनके गुरुबन्धुओ ने पायी थी अुसी को सगठित करके सेवा और प्रचार के द्वारा दुनिया भर मे फैलाने का सकल्प स्वामीजी ने किया। वेदान्त मे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि जो फिरके थे ओर जो अन्दर-अन्दर चर्चा और शास्त्रार्थ करने मे ही सन्तोप मानते थे अुन को स्वामी जी ने गौण बना दिया। वे स्वय शकरमत के अद्वैतवादी ही थे। किन्तु अद्वैत के आद्य आचार्य गौडपाद के पास से अुन्होने समन्वय-दृष्टि पायी थी। अिसलिअे अुनका अद्वैत सिद्धान्त किसी से भी झगडा नही करता था। ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग आदि सब मार्गो का अेकसा पुरस्कार करके अिनमे भी समन्वय लाने की अुन्होने पूरी-पूरी कोशिश की।

विवेकानन्द के पहले हमारे देश मे वेदान्त का प्रचार कम नही था। गौडपादाचार्य, शकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि महान् भाष्यकारो ने वेदान्तविद्या का विस्तार मानवबुद्धि की सीमा तक पहुँचाया था। महाराष्ट्र मे ज्ञानेश्वर, वामनपण्डित, दासोपन्त आदि मनीषियो ने गीता का सन्देश घर-घर पहुँचाया था। नामदेव, ज्ञानदेव, अेकनाथ, तुकाराम और रामदास जैसे सन्तो ने वर्णाश्रम-व्यवस्था को गौण बनाकर अभेदभक्ति के द्वारा समाज मे धर्मजागृति का काम किया था। जो कार्य महाराष्ट्र मे हुआ वही भारत के हर भाषा के और हर प्रदेश के सन्तो ने और धर्मपरायण कविओ ने अपने-अपने प्रदेश मे भी किया था। अीश्वरभक्ति, सदाचार, सन्तोष, सेवा और नाममाहात्म्य यह था, अुन सबके कार्य का निचोड।

लेकिन दुनियावी जीवन के बारे मे अिनका जोर जितना सदाचार और सन्तोष पर था अुतना तेजस्वी पुरुषार्थ, राजनीतिक अस्मिता,

भौतिक ज्ञानोपासना और सामाजिक सुधार के अूपर नही था । अंग्रेजो का और अग्रेजी विद्या का असर तो अुन्नीसवी सदी के प्रारम्भ से ही हमपर हो रहा था । लेकिन हम कह सकते है कि सारे राष्ट्र का जीवन-परिवर्तन तो १८५७ के बाद ही शुरू हुआ । हमारा धर्म, सन्तो का कार्य, अुद्योग-हुनर की प्रगति, कलाओ का विकास और साहित्य-सम्पदा सब कुछ होते हुअे भी हमारा राष्ट्रीय जीवन असगठित, दुर्बल और क्षीणवीर्य साबित हुआ । तीस चालीस बरस हम करीब-करीब किंकर्त्तव्यमूढ हुअे थे । अग्रेजी विद्या, सस्कृत विद्या और अरबी-फारसी मे ग्रथित अिस्लामी सस्कृति—सबका मूल्याकन करना हमारे लिअे आवश्यक मालूम हुआ । पुरानी सस्कृति का पुनरुज्जीवन करनेवाला अुद्धारक पक्ष और पुरानी बाते नि सत्त्व हो गयी है ऐसा समझकर अच्छी चीजे जहाँ से मिले वहाँ से लेकर जीवन मे नया चैतन्य लाने की सिफारिश करनेवाला सुधारक पक्ष—दोनो के बीच काफी सघर्ष चला । अेक ओर ब्रह्म-समाज और दूसरी ओर आर्य-समाज, दोनो विशाल जनता को अपनी ओर खीचते रहे और दोनो तरफ शक की निगाह से देखनेवाला सनातनी समाज पुरानी बातो का समर्थन करने मे असमर्थ साबित हुआ । आर्यसमाज मे भी मास पार्टी और घास पार्टी, गुरुकुल वाले और डी० अे० बी० कालेजवाले अैसे दो पक्ष हुअे । अैसी परिस्थिति मे धर्मानुभव की बुनियाद पर सस्कृति मे नवजीवन लाने की, शिक्षा मे राष्ट्रीयता दाखिल करने की और अुद्योग-हुनर के द्वारा आर्थिक अवदशा दूर करने की अेक सर्वागीण जागृति का देश मे अुदय हुआ । अुसके अग्रिम दूत थे, स्वामी विवेकानन्द ।

अमेरिका जाने से पहले अुन्होने सन्यासी के वेश मे सारे देश का भ्रमण किया था । अुन्होने परिस्थिति का गहरा निरीक्षण और परीक्षण भी किया था । अुद्धार का मार्ग अुन के सामने स्पष्ट था । अुन्होने देखा कि जिस समाज ने और राष्ट्र ने आत्मविश्वास खोया है अुस के

लिअे प्रतिष्ठा की सजीवनी बाहर से ही लानी होगी। अिसीलिअे वे अमेरिका आदि पश्चिम की ओर गये। वहाँ से अुन्हे शिष्य भी मिले और धन की सहायता भी मिली। भारतीय सस्कृति को अिस तरह प्रतिष्ठित और पुन स्थापित करके अुसके सामने अुन्होने विश्वविजय का आध्यात्मिक आदर्श रखा और देश मे जनता-जनार्दन की और खास करके दरिद्रनारायण की सेवा से प्रारम्भ किया।

स्वामी विवेकानन्द को सब से अधिक चिढ थी दुर्बलता की। बाकी के सब पाप वे बरदाश्त कर सकते थे, दुर्बलता को नही। अुनकी पूरी प्रवृत्ति को अगर कोअी यथार्थ नाम देना हो तो अुसे हम कह सकते है—शक्ति की अुपासना।

लेकिन बगाल मे कालीपूजा और पशु के बलिदान को ही शक्ति अुपासना मानते है। स्वामीजी के गुरु रामकृष्ण परमहस ने कालीमाता की पूजा और भक्ति से ही सब कुछ पाया था। अुस कालीअुपासना का विरोध स्वामी विवेकानन्द के मन मे नही था। लेकिन जिस शक्ति की अुपासना वे चाहते थे वह अलग ही थी।

जब स्वामीजी देश मे भ्रमण करते थे तब अुन्होने महाराष्ट्र मे रामभक्ति और हनुमान की अुपासना देखी और हनुमान की पूजा के साथ चलाये जानेवाले कुश्ती के अखाडे भी अुन्होने देखे। तब अुन्होने कहा, 'शक्ति की अुपासना के लिअे हनुमान का आदर्श अधिक अुपयोगी है।' अुन्होने अपने मठो मे रामकथा को सूचित करनेवाला अेक स्तोत्र चलाया और चाहा कि हनुमान को आगे करके शक्ति की अुपासना चलाना आज के युग के लिअे अधिक हितकर है।

अुनके द्वारा स्थापित अद्वैताश्रम और सेवाश्रम देश के लिअे आध्यात्मिक प्रेरणा के चैतन्य-स्रोत बने। अिन सस्थाओ ने अेक ओर शिक्षित वर्ग और विद्यार्थियो के बीच आत्मपरिचय और आत्मगौरव का वायुमण्डल पैदा किया और दूसरी ओर हीन-दीन, पतित और परित्यक्त

जनता को अपनाकर सारे राष्ट्र मे भावनात्मक अेकता का बल पैदा किया। सामाजिक सुधार का काम धर्म की निन्दा करके नही किन्तु धर्म से प्रेरणा पाकर ही हो सकता है अिस सिद्धान्त का परिचय सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द ने ही राष्ट्र को कराया।

जो लोग अीसाअी आदि लोगो को हिन्दू-धर्म के शत्रु मानते थे अुनकी दृष्टि शुद्ध करने का काम भी विवेकानन्द ने ही शुरू किया था। थिओसॉफी के साथ अुनका सहयोग नही हो सका। लेकिन थिओसॉफी का सर्वधर्म-समभाव स्वामी विवेकानन्द ने पूरा-पूरा अपना लिया।

स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्रपर कितना असर हुआ अिसका अन्दाजा लगाना हो तो हम कहेगे कि कविवर रवीन्द्रनाथ, श्री अरविन्द घोष और महात्मा गाधी ये तीनो पुरुप विवेकानन्द के वायुमण्डल मे ही पनप सके थे।

हिन्दू-धर्म के दोप देखकर अुसमे 'सुधार' करनेवाला अेक पक्ष था और हिन्दू धर्म की सुन्दरता का वर्णन करके अुस धर्म के प्रति लोगो की निष्ठा बढानेवाला अुद्धारक पक्ष भी था। अिन दोनो से अलिप्त रहकर हिन्दू-धर्म के जा मानवहितकारी तत्त्व है अुन्ही को आगे करके हिन्दू-धर्म को नया रूप देने का काम और अुसकी दार्शनिक भूमिका विशद करने का जो काम स्वामी विवेकानन्द ने किया वही आज हमारी दृष्टि से महत्त्व का है। अुसी के आधार पर आज हम सामाजिक अुन्नति भी कर सकते है।

जिस हिन्दू-धर्म के बारे म हमारे मन मे आज गौरव है और जिस के कारण आज की दुनिया हिन्दू जीवनदर्शन की ओर अिज्जत की निगाह से देखती है वह हिन्दू-धर्म कौनसा है?

रोटी-वेटी व्यवहार की मर्यादाओ मे फँसा हुआ और अनेकानेक जातियो के स्तरो की अुच्चनीचता को ही धर्मसर्वस्व माननेवाला हिन्दू-

धर्म आज किसी का भी आदर प्राप्त नही कर सकता। खानपान के नियमो की जिसमे प्रधानता है अुसे स्वामी विवेकानन्द ने Kitchen religion चुल्लिका-धर्म कहकर अुस से बचने की सिफारिश आज के जमाने को की थी। अद्वैत आदि दर्शनो मे व्यक्त हुआ वेदान्त धर्म ही सच्चा हिन्दू धर्म है, सदाचार, भक्ति, सेवा-वृत्ति, मानवता, निर्भयता, तेजस्विता और अुदारता के समुच्चय को ही स्वामीजी ने सच्चा हिन्दू धर्म कहा है। मनुष्यमात्र मे जो आत्मतत्त्व, अीश्वरा तत्त्व सोया हुआ है, अुसी को जाग्रत करना, अुसी का साक्षात्कार करना और मनुष्य-हृदय मे ही भगवान को प्रगट करना अिसी साधना का स्वामीजी ने पुरस्कार किया। आज भी हमे यही करना है।

वर्णाश्रम ही हिन्दू धर्म का हार्द है अैसी सार्वत्रिक मान्यता है। अिन मे आश्रम-व्यवस्था को तो अलग ही करना चाहिये। क्योकि ब्रह्मचर्य आश्रम 'सवर्णोको जनेअू देना' अितना ही जानता है। बाकी तो अुस की कब की हँसी हो चुकी है। गृहस्थाश्रम सारी दुनिया मे चलता है वैसा हमारे यहाँ भी है। पनिपत्नी की परस्पर निष्ठा और आतिथ्य अिन दो गुणो का पुरस्कार सब धर्मो मे पाया जाता है और अिन की कुछ हद तक अुपेक्षा सब के साथ हमारे यहाँ भी दीख पडती है। वानप्रस्थ आश्रम गायब है और सन्यास आश्रम तो अितना रूढि-निष्ठ हुआ था कि यदि स्वामी विवेकानन्द जैसे सन्यासियो ने अुसका मुख अुज्ज्वल न किया होता तो सन्यास धर्म और विधवा धर्म मे कोअी फर्क ही दीख न पडता। अिन चार आश्रमोका गौरवपूर्ण वर्णन तो अनेक किताबो मे हम पढ सकते है। किन्तु अिनके पुनरुद्धार का प्रयत्न नही के बराबर हो रहा है। भगवद्गीता मे चार आश्रमोका जिक्र नाम-मात्र ही है।

चार वर्णो की व्यवस्था जितनी शास्त्रो मे और ग्रन्थो मे है अुतनी सामाजिक जीवन मे नही दीख पडती। जाति-व्यवस्था के जगल मे

वर्णव्यवस्था नामशेष हुअी है। अुसका तात्त्विक समर्थन तो अवश्य हो सकता है, लेकिन वर्णव्यवस्था मे भयानक दोष भी है। वर्णव्यवस्था मे से प्रतिष्ठाकी अुच्चनीचता दूर करना आसान नही है। और अपने-अपने वर्ण के अनुसार चलनेवाले व्यक्ति के जीवन मे चार वर्ण के आदर्शो का समन्वय किये बिना हिन्दू समाज समर्थ हो नही सकेगा। और दुनिया मे प्रचलित जो अनेकानेक धर्म है अुनमे पारिवारिक सम्बन्ध की स्थापना किये बिना हिन्दू धर्म को साफल्य का सन्तोष मिलनेवाला नही है।

स्वामी विवेकानन्द की दी हुअी प्रेरणा अितनी असरकारक थी कि आज के सामाजिक नेताओ के मानस मे वह दृढमूल हो चुकी है। अुसी प्रेरणा को आगे बढाकर रूढिपरायण समाज का जीवन-परिवर्तन करने मे अगर हम अपना जीवन लगा देवे तो वही होगी स्वामी विवेकानन्द के चरित्र-कीर्तन की अुत्तम फलश्रुति।

१५ जनवरी १९६२

—o—

: २ :

नव-भारत का उद्‌बोधक संन्यासी

भारत की साधना आत्म-परिचय की है। आत्म-तत्त्व के परिचय के द्वारा ही हमारी सम्कृति समृद्ध होती आओी है। विश्व का परिचय हमे अुस के आघात के द्वारा होता आया है। लेकिन विश्व-परिचय को हम आत्मसात् कर सके है अपने को ही नये नये ढग से पहचानकर।

महाभारत के कौरव असल मे कौन थे ? पाडव कौन थे ? श्रीकृष्ण के यादव अिन दोनो से अलग किस बात मे थे ? हम यथार्थ मे कुछ नही जानते। विश्व कुटुम्ब के खयाल से हमने अिन सब को अेक-दूसरे के पारिवारिक बनाकर ही देखा। महाभारत के भीषण सघर्ष के बाद हस्तिनापुर मे अेकछत्री साम्राज्य स्थापित हुआ। मयासुर चीन से स्थापत्यकला ले आया। श्रीकृष्ण की समन्वयी दृष्टि काम करने लगी, किन्तु आतरिक क्षीणता दूर न हो सकी। हमे आत्म-परिचय पाने के लिअे पॉच सौ या हजार वर्ष व्यतीत करने पडे और आखिरकार बुद्ध और महावीर जैसे ज्ञानी-ध्यानी कर्मयोगियो ने सस्कृतिव्यापी आत्म-परिचय पाया। भारतीय महायुद्ध के फलस्वरूप भगवान महावीर की अहिसा और बुद्ध भगवान का अवेर भारतीय आत्मा को जँचा। भगवान महावीर ने तपस्या का रास्ता लिया और बुद्ध भगवान ने माध्यम मार्ग की परिव्रज्या धारण की। गोतम ने स्वय मगधकोशल मे और अुत्तर भारत मे विहार किया। लेकिन अुन के भिक्खु शिष्यो ने 'देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी' अशोक की प्रेरणा से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, अुत्तर—सब

दिशाओ मे सचार किया , जिस का असर सारे अेशिया पर हुआ और अब पश्चिम के मनीपियो के अूपर भी कमोबेश हो रहा है ।

अशोक के बाद हमारे यहाँ फिर से ग्लानि आअी । जहाँ हम पहले देश-विदेश जाते थे, देश-विदेश के विजयी लोग अब हमारे यहाँ आने लगे । अलैक्जान्डर आया, मोहम्मद बिन कासिम आया, पठाण आये, मुगल आये, और अुन्हो ने हमे जबरदस्ती अरबस्तान की धर्मजागृति से और अीरान की सस्कृति-समृद्धि से परिचय कराया ।

लेकिन अिस परिचय से हम तब लाभ अुठा सके जब हमारे सन्तो ने सगुण-निर्गुण भक्ति-मार्ग के द्वारा आत्म-परिचय की साधना हमे सिखायी ।

जबतक हम भारत के बाहर जाते रहे, हमारे अन्दर ताकत और ताजगी बढती रही । किन्तु हम लोगो ने आत्मशुद्धि के नाम से, बीजशुद्धि के आदर्श से कूपमडूक बनना पसन्द किया । अटक की अटक पैदा करके अुसी के अन्दर हम अटक गये । और भगवान को समुद्रकी दिशा से आक्रमणकारियो को भेजकर हमे जबरदस्ती विश्व-परिचय कराना पडा ।

यह प्रक्रिया सन् १८५७ तक चली । हमारे यहाँ फिरगी आये, बलदा आये, फ्रासीसी आये और अग्रेज भी आये । देखते-देखते हमारे यहाँ 'टोपीवालो' का राज्य हुआ । अुन की कवायद ओर अुन की तिजारत ने हमे परास्त किया । हमारे यहाँ पश्चिमी विद्या के विश्वविद्यालयो की स्थापना हुअी और हम आत्मविश्वास खोकर किंकर्तव्यमूढ बन गये । पश्चिम से परिचय तो हुआ, लेकिन अुस के सामने हम चकाचौध हो गये ।

अैसे समय अन्तर्मुख होकर आत्मपरिचय कराने का काम जिन मनीषियो ने किया अुनमे आज हम याद करते है राजा राममोहन राय को और स्वामी विवेकानन्द को । दोनो की साधना अेक सी थी । अन्तर्मुख होकर अपनी आध्यात्मिक पूँजी का जीवत परिचय पाना और

पश्चिम मे जाकर अपने आत्मविश्वास को प्रकट करना ।

स्वामी विवेकानन्द ने देखा कि अध्यात्म के बिना धर्म निष्प्राण है । अुन्हो ने यह भी देखा कि गुफा मे बैठकर अध्यात्म का चितन करने से परलोक की साधना शायद हो सकती है, किन्तु धर्मजागृति तो लोगो के साथ, हीन-दीन, पतित और परित्यक्त दरिद्र-नारायण के साथ अेकरूप होकर अुन की सेवा के द्वारा ही हो सकती है ।

स्वामी विवेकानन्द की पूर्व तैयारी मे हम तीन तत्व-विशेष देखते है—१) पश्चिम की अग्रेजी विद्या, २) ब्राह्मसमाज के सामान्य सस्कार और ३) सगीत के प्रति असाधारण अनुराग । अिस त्रिविध तैयारी के साथ नियति ने अुन को रामकृष्ण परमहस के पास भेजा । परमहस जैसे आत्मसाक्षात्कारी पुरुप के ससर्ग के बिना नरेन्द्रनाथ की विभूति पूरी जाग्रत हो न पाती । परमहस के साथ अुन का सम्बन्ध बडा विचित्र था, मन मे श्रद्धा भी थी और विरोध भी था । गुरु महाराज को अुन्हो ने अनेक तरह से कस कर देखा । अपनी अश्रद्धा को भी पूरा अवकाश दिया । और हम कह सकते है कि गुरुमहाराज भी अपने शिष्योत्तम को पहचान कर स्वय ही अुस को घेर सके । क्योकि अुस के द्वारा ही अुन्हे युग-कार्य करना था । स्वामीजी की आध्यात्मिक तैयारी गुरुमहाराज के सहवासमे पूरी हुअी । किन्तु अुनके मिशन के लिये अितना पर्याप्त नही था ।

तब अेक अज्ञात सन्यासी के रूप मे अन्होने सारे भारतवर्ष की यात्रा की । मान-अपमान सहन किये । गरीबो के घर की रोटी खाअी । हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी जैसा कोअी भेद नही रखा और भारत-माता के हृदय का और अुस के भावी को पूर्णरूप से देख लिया ।

अब भारत के भाग्य ने अुन्हे अमरीका भेजा । जबतक अमरीका अुन का स्वीकार न करे, दुर्भागी भारत पर अुन का पूरा असर नही हो सका । रवीन्द्रनाथ के बारे मे भी हम यही देखते हे । अुन्हे नोबल

प्राअिज देकर पश्चिम ने अुन की प्रतिभा को मान्यता दी, तभी अिस विश्वकवि के अन्दर वर्तमान भारत ने अपना गौरव देखा। गाधीजी को भी आत्मशक्ति का परिचय स्वय पाने के लिअे और दुनिया को बताने के लिअे दक्षिण आफ्रिका जाना पडा। जब स्वामीजी विश्व-धर्म-परिषद् के लिअें अमरीका गये तब अुन की अुम्र तीस साल की थी। यकायक दुनिया के सामने वे चमके और अुस के बाद नौ साल के अन्दर अुन्हो ने अपना जीवनकार्य पूरा किया। ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग आदि ग्रन्थो के द्वारा और अपने जीवन के अुत्कट कर्मयोग के द्वारा स्वदेश को और पश्चिम के देशो को प्रभावित किया। और अपने अुत्कट हृदय को व्यक्त करनेवाले पत्रो के द्वारा अुन्होंने भारत के अनेकानेक नवयुवको को जगाया। पश्चिम से वे विशेष धन तो नही ला सके, लेकिन पश्चिम से अुनको निष्ठावान शिष्य काफी मिले। अिस का भी असर भारत के लोक-मानस पर सविशेष हुआ। जहाँ गोरे लोग हमारे मालिक, शेठ और गुरु ही बन बैठे थे, वहाँ अुनको भारत का शिष्यभाव से शुश्रूषा करते देख कर भारत का न्यूनगड— Inferioritty Complex दूर हुआ। यह भी अेक बडी सिद्धि थी। मिशनरी लोगो ने हमारे धर्म के और हमारे समाज के छोटे-बडे सच्चे-झूठे सब दोषो की ओर अुगलियाँ बताकर हमारा तेजोवध किया था और हमारे उद्धार के लिअे हम लोगो को ओसाओ बनाने का कार्य जोरो से चलाया था। सन् १८५७ से लेकर १८९७ तक चालीस बरस मे अग्रेजो ने भारतको राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, औद्यागिक और सास्कृतिक क्षेत्रो मे पूरा-पूरा जीत लिया था। अिस के खिलाफ स्वामीजी ने प्रथम आवाज अुठाओ १८९३ मे अमरीका जाकर। और बाद मे पश्चिम की बाढ हटाने के लिअे ही मानो अुन्हो ने हिन्दू वेदान्त धर्म का प्रचार करनेवाले अद्वैताश्रम अमरीका मे खोले। यह कार्य विशेष रूप से प्रतीकात्मक ही था। अिस का असर पश्चिम पर तो हुआ ही, लेकिन अधिक हुआ भारत के क्षीण हुअे आत्मविश्वास पर।

मै अपने ही बाल्यकाल का और यौवनकाल का जब विचार करता हूँ तब स्वामी विवेकानन्द ने हमारे हृदयपर कैसा जादुअी असर किया था अुसे याद कर आज भी गद्‌गद्‌ होता हूँ। हमारे बचपन मे श्रद्धा और बुद्धिवाद का सघर्ष चलता था। पश्चिमी सस्कृति को प्रधानता देनेवाले सुधारक तथा पश्चिम का अन्ध-विरोध करके पुराने जमाने को फिर से सजीवन करने की वृथा चेष्टा करनेवाले दकियानूसी अुद्धारको के बीच दारुण सघर्ष चलता था। यह सघर्प विशेष रूप से बगाल और महाराष्ट्र मे बडी तीव्रता से चल रहा था। पूर्व और पश्चिम का तनाजा तो था ही। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज और थियोसोफी अपने-अपने ढग से धर्मजागृति का काम कर रहे थे। अिन सब विरोधी प्रवृत्तियो मे से भविष्य के लिअे पोषक तत्त्वो को अिकट्ठा कर के अद्वैत का समन्वय-कार्य स्वामी विवेकानन्द ने चलाया। स्वामीजी का अद्वैत केवल दार्शनिक नही था। सर्वसमन्वयकारी अद्वैत का दार्शनिक और सामाजिक पुरस्कार अुन्हो ने किया। अुन के हिन्दू धर्म मे अिस्लाम के प्रति और ओीसाअी धर्म के प्रति भी आदर ही था।

भारत की यात्रा के द्वारा अुन्हो ने जो देशनिरीक्षण किया था, भारत के अितिहास का जा रहस्य पाया था और सामाजिक आत्मा को पहचाना था, अुसी सबलपर अुन्हो ने सन्यास आश्रम को अेक नया ही रूप दिया। और देश मे अनेकानेक अद्वैताश्रम और सेवाश्रमो की स्थापना करके सास्कृतिक अुत्थानके लिअे रचनात्मक कार्य की नीव डाली। स्वामीजी यदि अधिक जीते तो अुन्हो ने वेदान्तके विश्वविद्यालय की स्थापना की होती। शिक्षण के द्वारा जीवनपरिवर्तन और सस्कृति-सवर्धन करने का ही अुनका सारा प्रयत्न था। अुन के कार्य के अिस पहलूका कुछ विकास भगिनी निवेदिता ने किया है।

मै तो मानता हूँ कि श्री रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द और भगिनी निवेदिता—अिन तीन विभूतियो का त्रिवेणी सगम ही

प्रबुद्ध भारत के लिअे तीर्थोत्तम प्रयागराज है। भगिनी निवेदिता की अैतिहासिक, सामाजिक, शैक्षणिक और सास्कृतिक सेवा के द्वारा स्वामी विवेकानन्द का युगकार्य राष्ट्रीय स्वरूप पकड सका। कविवर रवीन्द्रनाथ, योगीराज अरविद घोष और महात्मा गाधी—तीनो की जीवन दृष्टि पर और अुनके युगकार्य पर स्वामी विवेकानन्द का असर हम स्पष्ट देखते है। और यदि देखना ही हो कि विवेकानन्द का असर आज भी कितना गहरा है, तो मै कहूँगा कि हम दो मद्रासी छोटेसे निवन्ध देखे—अेक राजाजी का The Religion of the Future और दूसरा डॉ० राधाकृष्णन का The Religion we need

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति तदा तदा' हिन्दू धर्म ने और हिन्दू सस्कृति ने कायाकल्प करके नया और अुज्ज्वलतर रूप धारण किया है। अिस हिन्दू सस्कृति का अेक विभाग है अुसका सन्यास आश्रम। अिस आश्रम के अितिहास मे अुत्थान और पतनके अनेक पहलू पाये जाते है। भारतीय सस्कृति का कोअी प्रतिभावान अितिहासकार जब सन्यास आश्रम का अितिहास आमूलाग्र लिखेगा, तब हमारे पुरखो ने जीवन के कैसे-कैसे प्रयोग किये थे और सामाजिक जीवन का आध्यात्मिक सगठन करने के लिअे कौन-कौन से तत्त्वो का अनुशीलन किया था, अिस सारी हकीकतपर नया ही प्रकाश पडेगा। हमारे यहाँ सन्यासियो के प्रकार कम नही हुअे है। शुक्रमुनि का अेक तरह का सन्यास तो याज्ञवल्क्य का दूसरे ही प्रकार का। बुद्ध और महावीर के सन्यास रूढिविनाशक तो शकराचार्यका सन्यासी सब रूढियो को हजम कर नयी ही रूढि पैदा करने वाला नव-सगठनात्मक।

हमारे यजनमार्गी पूर्वमीमासा ने सन्यास का सीधा अिन्कार किया। और श्रीकृष्ण ने सन्यास आश्रम को गौण बनाकर सन्यासयोग को प्रधानता दी। मै मानता हूँ कि याज्ञवल्क्य का सन्यास जीवननिष्ठ अधिक था, और याज्ञल्क्य स्वभाव से प्रोटेस्टट तो थे ही।

सन्यास आश्रम को मिशनरियो का रूप दिया बुद्ध भगवान ने और अुस को प्रोत्साहन दिया सम्राट अशोक ने। अुन्ही के समकालीन महावीर स्वामी ने अपने सब साधुओ के द्वारा अहिसा और तपस्या की प्रयोगशालाये चलायी। भारत के मध्ययुगीन सतो ने सन्यास के प्रति समाज का आदर कायम रखकर अुस की अनावश्यकता पर ही जोर दिया। सतो का कार्य भक्तिमार्ग के द्वारा और वैष्णव अुपासना के के द्वारा अितना बढा, कि सन्यास आश्रम आश्रम-व्यवस्था का अेक अुपेक्षित और आश्रित अग ही बन गया।

हमारे पुरखो ने सन्यास आश्रम का कलिवर्ज्य कहकर अुसे पेन्शन दी ही थी। लेकिन बुद्ध भगवान ने वर्णव्यवस्था को गौण करने के लिअे भी भिक्षु सस्था पर भार दिया। अुनकी और महावीर की सफलता देख कर शकराचार्य को सन्यास आश्रम की पुन स्थापना करनी पडी। बहुत से सन्यासियो का केवल दार्शनिक नेतृत्व ही टिक सका। और सामाजिक नेतृत्व शकराचार्य के चार मठो ने सँभाला। शकराचार्य का काम काफी प्रभावशाली सिद्ध हुआ। लेकिन वह वर्णाश्रम के जाल मे फँस जाने के कारण धीरे-धीरे क्षीणप्राण हो गया। सतो का कार्य और पश्चिमी विद्या का असर—दोनो के सामने सन्यास आश्रम को विश्वास के साथ नया रूप दिया स्वामी विवेकानन्द ने। काचन और कामिनी का त्याग—अिस अेक ही तत्वको प्रधानता देकर, बाकी के सब यतिधर्म के विस्तार की अुन्हो ने काट-छाँट की, और अपने सन्यासियो को सेवा और धर्मप्रचार की दीक्षा दी।

रामकृष्ण मिशन का कार्य जहाँ जनभाषा बगाली मे चला वहाँ वह जनता तक पहुँच गया। बगाल के बाहर अुन्हो ने अग्रेजी का सहारा लिया अिसलिअे अुन का कार्य आग्लविद्या-विभूषित वर्गों तक ही सीमित रहा यह बडे दुर्दैव की बात है।

स्वामी विवेकानन्द की जन्मशताब्दी के निमित्त रामकृष्ण-विवेकानन्द-

निवेदिता साहित्य का प्रचार भारत की सब भाषाओ मे होगा । अिस प्रचार करने मे गाधीजी के कार्यकर्त्ताओ की मदद भी अच्छी मिलेगी । अिसलिअे हमारा खयाल है कि स्वामी विवेकानन्द का सन्देश और कार्य भारत की जनता तक अब अधिक जोरो से पहुँचेगा । लेकिन अिस के लिअे केवल साहित्य का प्रचार काफी नही है । सेवाश्रमो की सख्या भी बढनी चाहिअे ।

अिसमे भी मै मानता हूँ कि आज भारत को विशेष आवश्यकता है स्त्री सन्यासिनियो की । काम आसान नही है, किन्तु समय की वही माँग है । भगिनी निवेदिता ने अिग्लैन्ड की ओर से भारत की जो सेवा की अुस के फलस्वरूप रामकृष्ण मिशन की स्त्रीशाखा जोरो से बढनी चाहिअे । अिस का असर बहुत अच्छा और कल्पनातीत होगा ।

स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अरविंद घोष और महात्मा गाधी—अिन चारो युगपुरुषो के कार्यो की परम्परा अब समन्वित रूप मे चलाने के दिन आये है । यह युग है ही समन्वय का । अद्वैताचार्य गौड-पादाचार्य ने कहा ही है —'और लोग भले ही आपस मे लड, हम अद्वैतवादियो का किसी से झगडा हो ही नही सकता । हमारी भूमिका सर्व-समन्वय की है । और समन्वय ही युगधर्म है ।

१ जुलाई १९६३

—०—

३

स्वामी विवेकानन्द का युगकार्य

स्वामी विवेकानन्द ने नवभारत का—प्रबुद्ध भारत का आरभ किया अिसलिअे मै अुन्हे सच्चे युग-पुरुप कहूँगा । हमारे अिस युग के तीन महापुरुष हुअे । अेक कविवर रवीन्द्रनाथ, दूसरे महायोगी अरविन्द और तीसरे कर्मवीर महात्मा गाधी । अिन तीनो के काम, अिन तीनो महा-पुरुषो की वाणी, साहित्य और अुन के कार्यप्रवाह का विचार कर के मै कहता हूँ कि अिन तीनो के युगकार्य मे स्वामी विवेकानन्द का हिस्सा बहुत बडा था ।

ब्रिटिश काल मे स्वामी विवेकानन्द के पूर्व के लोगो ने भारतीय सस्कृति के सबध मे श्रद्धाभाव प्रकट किया था सही, परन्तु वे केवल हमारे धर्मग्रथो के प्रति आदर दिखाने वाले लोग थे । हमारे वेद और शास्त्रो के प्रति अुन्हे औत्सुक्य था, कुतूहल था । थियोसोफिकल सोसा-यटी की भी स्थापना हो चुकी थी । मैक्समूलर आदि विद्वानो ने जर्मनी मे और अिग्लैड मे वेदादि का अध्ययन किया था । परतु 'भारतीय सस्कृति जगत् को नया रास्ता बता सकती है' यह प्रकाश पश्चिमी देशो को दिखाने का काम स्वामी विवेकानन्द ने ही पहले पहल किया । फिर वहाँ से लौटकर अुन्होने भारत मे आत्मविश्वास जमाने का भगीरथ प्रयत्न किया । स्वामीजी का यह काम सचमुच अद्भुत था ।

जिस काल मे स्वामी विवेकानन्द ने दुनिया पर और भारत पर अपना तेजस्वी असर डाला अुसी युग का मै अेक नवयुवक हूँ । अुन से

पहले हम नवजवान लोग क्या सोचते थे और बाद मे क्या सोचने लगे अुस सारे परिवर्तन का मैने अनुभव किया है ।

'अग्रेजो का राज हितकर नही है' अैसा अनुभव कर हमारे राष्ट्र ने अुन्हे हटाने का जो प्रथम प्रयत्न किया वह समय था सन् १८५७ का । अुस समय हमारा पूरा सगठन नही था । निश्चय भी पूरी तरह परिपक्व नही था कि देश से अुन्हे निकलना ही है । तो भी सारे देश मे जगह-जगह लोग अुठ खडे हुअे जरूर । वह प्रयास 'गदर' के जितना क्षुद्र नही था । और अुसकी अितनी तैयारी भी नही थी कि हम अुसे 'स्वातत्र्य युद्ध' कह सके । हमारी अुस हार से अग्रेजो ने पूरा लाभ अुठाया और तभी से अग्रेजी राज्य की नीव अिस देश मे मजबूत हुअी ।

अुस हमारी हार के बारह वर्ष बाद अग्रेजी आक्रमण को शिकस्त देने वाला अेक समर्थ पुरुष पैदा हुआ स्वामी विवेकानद । सन् १८५७ की हमारी हार केवल सामरिक हार नही थी । वह थी पूरी नैतिक हार । हमारे समाज के कअी प्रतिष्ठित लोगो ने अग्रेजी राज्य का प्रसन्नता से स्वागत किया । अुस के गीत भी गाये । अग्रेजो के प्रति लोक-हृदय मे निदा और घृणा भरी थी । लेकिन अितना होनेपर भी तब के अेक महाराष्ट्रीय कवि ने गाया था "धरातळी अिंग्रजा सारिखा प्रभु नाही दूसरा ।" जब अग्रेजो की विजय हुअी, और महाराष्ट्र मे पेश्वाओ का राज्य समाप्त हुआ तब खुशी मनाने के लिअे अग्रेजो ने जो भेट दक्षिणाये बाँटी अुन को लेने के लिअे वेद-शास्त्र-सपन्न शास्त्री लोग भी दौडे-दौडे गये थे । अिस हद तक हम हृदय से हारे थे । मै महाराष्ट्र का हूँ अिसलिअे मैने महाराष्ट्र की बात की । बाकी भारत मे अिससे अच्छी स्थिति नही थी ।

अीश्वर की रचना ही अैसी है कि जब कोअी बुराअी पैदा होती तब अुस के निवारण का अिलाज भी साथ-साथ जन्म लेता है । जैसा कि कोकण मे नारियल के साथ-साथ कोकम के पेड भी पैदा होते है ।

नारियल से जो पित्त-वृद्धि होती है अुसका शमन कोकम के सेवन से होता है। औषधि-विज्ञान जानने वाले बता सकते हैं कि वन मे जहाँ विष के पोधे होते है वहाँ पास मे ही अमृत का काम देने वाली वनस्पति भी मिल जाती है।

गाधीजीने और अभी-अभी विनोबा ने देश का जो भ्रमण किया अुस बात को हम छोड दे। अिन से पहले बडे-बडे नेता और देशनायक हमारे यहाँ हुअे, परन्तु भारत की हर दिशा मे जाकर, गाव-गाव की हालत देख कर और लोगो की रोटी खा कर लोकस्थिति का पूरा-पूरा अनुभव यदि किसी ने पहले पहल किया हो तो वह थे स्वामी विवेकानन्द।

सशय-असशय से घिरे हुअे कालेज के अपने दिनो के बाद स्वामीजी ने साधना शुरू की। रामकृष्ण परमहस से अुन्हो ने सशय-निवारण पा लिया। और फिर देशदर्शन किया। मुसलमानो के यहाँ भी अुन्हो ने रोटी खाअी और अीसाअियो के यहाँ भी खाअी। गरीबो की रोटी खाअी और राजाओ के यहाँ भी खाअी। सज्जन-दुर्जन, महात्मा-दुरात्मा, सब तरह के लोगो को देखा। अिस प्रकार देश और समाज की पूरी-पूरी स्थिति देखने के बाद अुन्हो ने अपना आत्मविश्वास दृढ किया और प्रकट भी किया। बुरी हालत के देश-दर्शन से अुनमे नास्तिकता नही आअी। हमे दबानेवाली विद्या जहाँ से आअी वही जा कर अपने आत्म-तेज और ब्रह्म-तेज से स्वामीजी ने पश्चिम को चकित कर दिया।

कोअी सिफारिशी सस्था का बल अुन के पास नही था। अपने ही बल पर अुन्होने विदेश यात्रा की। और दुनिया को अुन्हो ने बताया कि विश्व के किसी भी धर्म से भारत का धर्म कम नही है। दूसरी किसी भी सस्कृति से भारत की सस्कृति घटिया नही है। शायद, अधिक है। दुनिया को अुससे सीखना होगा।

विदेशो मे कअी लोग अुन के शिष्य बने, अुनके चरणो मे बैठे और अुन से अुपदेश लिया। अिस तरह स्वामीजी ने पश्चिम मे

जो नगाडा बजाया अुस का घोष भारत पहुँचा और हमारे लोगो मे अपनी सम्कृति पर विश्वास पैदा हुआ। अमरीका से स्वामीजी अिग्लैड गये। और फिर वहाँ से फ्रास आदि यूरप के देशो मे भी गये। जब वे विदेशयात्रा से लौटकर आये तब अुन्हो ने लका की राजधानी कोलबो से लेकर हिमालयके अल्मोडे तक करीब दिग्विजय-जैसी यात्रा की।

अितना कर के वे रुके नही। अुन्होंने देश-भर मे अद्वैताश्रम और सेवाश्रम जैसी दो प्रकार की सस्थाये स्थापित की। यह स्वामी विवेकानन्द का ही काम था कि अुन्हो ने सन्यास-आश्रम को नये ढग से सजीवन किया।

वर्ण और आश्रम के बारे मे हम जरा सोचे।

जाति-धर्म और कुल-धर्म को गीता ने शाश्वत कहा है। वर्ण-धर्म बाद मे पैदा किया गया है। वर्णव्यवस्था के साथ आश्रम व्यवस्था भी चली। भगवद्गीता मे चार वर्णो का जिक्र विस्तार से आया है पर चार आश्रमो का अुल्लेख बहुत कम है। सारी गीता मे चार आश्रम का कही पुरस्कार नही है अैसा ही कहना चाहिये। अग्नि अुपासना छोड कर जो सन्यास आश्रम लिया जाता है अुसका जरा-सा जिक्र ही गीता मे है लेकिन गीता के भगवान ने सन्यास आश्रम के स्थान पर सन्यास-योग का ही पुरस्कार किया है। गीता मे 'आश्रम' शब्द तक नही है।

वेदविद्या के आग्रही जो पूर्व मीमासावादी थे अुन्होने सन्यास आश्रम का स्वीकार ही नही किया। सन्यास आश्रम को अुन्हो ने निरा पागलपन माना था।

बाकी के लोगो ने सिद्धात के रूपमे सन्यास आश्रम को अच्छा बताया फिर भी मध्यकालीन शास्त्रकारो ने अुसे हटाना चाहा। यह कहकर कि यह सन्यास-आश्रम कलिवर्ज्य है, यानि कलियुगमे नही चलेगा, न चलना चाहिये, वे अिस से मुकर गये।

परन्तु जब बौद्ध-जागृति आयी और बौद्धोने और जैनो ने श्रमण सस्कृति शुरू की तब शकराचार्य ने सोचा कि कलिवर्जित होने पर भी हमे यह सन्यास आश्रम फिर से चलाना चाहिये। अत अुन्होने हिन्दू-धर्म को अिस तरह सगठित किया कि अुस मे सन्यास आश्रम को विशेष प्रतिष्ठा मिली। सन्यास आश्रमवालो को भी अुन्हो ने नये प्रकार से सगठित किया और सन्यासियो के दम मठ या अखाडे बनाये।

शकराचार्य द्वारा की गअी यह व्यवस्था आज भी चल रही है किन्तु अब अुसमे तेज नही रहा। भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग को बढावा देकर हमारे सतो ने सन्यास आश्रम की महत्ता कम कर दी, और अुसे करीब अुपेक्षित बना दिया। सन्यासियो की परपरा तो चली कितु वह केवल परपरा ही रही।

बाद मे देश को जगाने के लिअे परिव्राजको की जरूरत है यह देखा स्वामी विवेकानन्द ने, और अुन्हो ने अिसे नया रूप दिया। रामकृष्ण परमहस के ये शिष्य स्वामी-लोग नये किसम के सन्यासी बने। विवेकानन्दजी ने यह प्रणाली चलायी कि सन्यासी लोग रहे अद्वैताश्रम मे और काम करे सेवाश्रमो मे। अर्थात् उन्होने कर्म-प्रवण सन्यास को चलाया। अिन लोगो ने विद्यार्थियो के छात्रालय भी चलाये है।

अिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने अपना युगकार्य शुरू किया। अिस से प्रेरणा पाकर रवीन्द्र ने शातिनिकेतन मे ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की, अरविदने पोडिचेरी आश्रम की स्थापना की। और गाधी जी ने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। विनोबा ने पिछले बारह वर्षो मे छ नये आश्रमो की स्थापना की है। वास्तव मे ये सब आश्रम हमारे लिअे आध्यात्मिक-सामाजिक जीवन के प्रयोगालय बने है। विज्ञान के लिअे जिस प्रकार लेबोरेटरी होती है अुसी प्रकार समाज के विकास और अत्थान के लिअे आश्रम जरूरी है।

स्वामीजी ने कहा कि सन्यास आश्रम मे रहकर हमे बगीचे मे शाक-सब्जी अुगाने का काम भी करना है और मदिर मे जाकर हमे ध्यान मे भी बैठना है। हमे सैनिक भी होना है और सेवक भी बनना है। स्वामीजी ने अिस प्रकार सारे समाज को बदलने की कोशिश की।

आप को यदि स्वामी विवेकानन्द का हृदय देखना है तो स्वामीजी के लिखे हुअे पत्र देखे। मेरी राय मे स्वामी विवेकानन्द को समझने के लिअे दो ग्रथ महत्त्व के है—अेक तो अुन के पत्रो का सग्रह और दूसरा है निवेदिता का लिखा हुआ Mastei as I saw him। निवेदिता के अिस ग्रथ मे स्वामी विवेकानन्द की मशाल की ज्योति हम देख सकते है, जो स्वामीजी ने अपने जीवन को जला-जला कर प्रकट की थी। बडी जल्दी अुन का जीवन खत्म हुआ। परतु वह जीवन अपने ढग से कृतार्थ बना। हमारे मारे राष्ट्र मे और सारी दुनिया मे स्वामीजी बोये गये। चालीस की अुम्र पूरी होने से पहले ही वे चले गये। परतु अितने थोडे समय मे बडी शीघ्रता से अुन्हो ने अपना भारतव्यापी सारा काम किया।

महापुरुषो की बात जब हम सोचते है तब यह महत्त्व का नही कि वे माता के अुदर से कब जन्मे थे। परतु यह सोचना चाहिये कि कब हमारे हृदय मे वे जन्मे ? स्वामीजी ने मुझे नास्तिकपन से बचाया। ओश्वर पर विश्वास न करने के वे दिन थे मेरे, जो दिन मनुष्य के जीवन मे कभी न कभी आना आवश्यक होता ही है। अैसी नास्तिकता मुझ मे न आती तो मै केवल परपराओ का अुपासक और रूढिवादी ही आस्तिक रहा होता।

मेरे जो सशय के दिन थे अुन का भी मैं आदरपूर्वक श्राद्ध करता हूँ। वे दिन आये और गये और अुस की जगह अीश्वर पर श्रद्धा फिर से अुत्पन्न की न्यायमूर्ति रानडे के धर्मप्रवचनो ने। लेकिन मेरा अुद्धार करने वाले, मेरे हृदय को जाग्रत करके आगे ले जानेवाले जो युगपुरुष थे वह तो

थे स्वामीजी, जिनकी तेजस्वी वाणी ने मुझे जगाया ।

स्वामी विवेकानद ने जो किया और कहा अुसी में से हम लोगों को रवीन्द्रनाथ जैसे नये लोग मिले । अुसी मे से अरविन्द मिले । और महात्मा गाधी भी अुसी मे से मिले ।

प्रश्न होगा कि विवेकानद का सबध श्री अरविद से कैसे रहा, तो मै बताता हूँ कि अरविद के अपने हस्ताक्षरो से लिखी हुअी अेक नोटबुक मेरे पास थी । अुस मे अुपनिषद की अपनी पहली लेखमाला अरविद ने लिखी थी । और वह रामकृष्णविवेकानद को अर्पण की गअी थी । वह नोटबुक मै ने पोडिचेरी आश्रम को भेंट की है ।

महात्मा गाधी ने रामकृष्ण की जीवनी की प्रस्तावना मे अुन्हे God-man कहा है ।

अपने जमाने का कार्य करने वाले विवेकानद अकेले नहीं थे । तीन आत्माओ ने मिल कर यह काम किया था । श्री रामकृष्ण परमहस ने हमें वेदान्त के अध्यात्म का मर्म दिया । विवेकानद ने अुस अध्यात्म का मानव-सेवा मे विनियोग कर के बताया । अुन की शिक्षाओ ने बताया कि किस रीति से अध्यात्म अपनाया जाय । और भगिनी निवेदिता ने हमे अुसका समाज-विज्ञान दिया । अिस त्रिमूर्ति को अेकसाथ लेकर हमें सोचना है । तीनों का साहित्य साथ लेकर पढना है । रामकृष्ण-विवेकानद-निवेदिता, तीनो की जीवनी और अुन का साहित्य अेकत्र पढे तब अुस युग कार्य की—मानव-कार्यकी जानकारी आज के जमाने को मिलेगी ।

रामकृष्ण अैसे कुशल गुरु थे कि जब वे अेक विद्यार्थी को अुस के अनुकूल साधना-अुपासना बताते थे तब अपने दूसरे शिष्यों को वहाँ अुपस्थित नही रहने देते थे । परमहस के बाद अपने सब गुरु-भाअियो को साथ लेकर चलने का और आध्यात्मिक परिवार बनाने का काम स्वामी विवेकानद ने किया ।

चार-चार शादियाँ करनेवाले गृहस्थी भी कअी दफे निपुत्रिक होते है । किंतु सन्यासी की परपरा कभी निपुत्रिक नही बनी । हमारे अिस भारत मे सन्यापी-परपरा अखड चालू ही है ।

यह भी भारत के समाज के हित मे बडी अच्छी बात हुअी कि हिन्दूधर्म के जागरण के साथ स्वामी विवेकानद ने हर धर्म के प्रति आदर से सिर झुकाया है । अिस्लाम, यहूदी, ओसाअी, बौद्ध—सब धर्मों को अुन्हो ने अपनी श्रद्धा अर्पण की है ।

जिस धर्म का जो विशेष दिन हो अुस दिन अुन्हो ने अपने आश्रम मे बदल-बदलकर अुपासनाये चलाअी । क्रिसमस के दिन रामकृष्ण परम-हस के चित्र मे ओसामसीह को देखना यह स्वामी विवेकानदजी की नअी साधना है । रामकृष्ण परमहस ने ओसाअियो की, अिस्लाम की और अन्य साधनाये कर के अनुभव मे कहा कि सब धर्म सही है । अिसी अनुभव को अुन्हो ने अपनी सस्थाओ के द्वारा फैलाया । विवेकानद के बाद गाधीजी ने अपने आश्रम की प्रार्थना मे सब धर्मो की प्रार्थना अेकत्रित की और सर्व-धर्म-समभाव चलाया । हम अब कहने लगे है कि सर्व-धर्म-समभाव से भी आगे बढकर हमे सर्व-धर्म-ममभाव कायम करना है । दुनिया मे अिस समय सब धर्मो के बीच शीत-युद्ध चलता है । आफ्रिका मे मुसलमान और ओसाअी प्रचारक मौन-सघर्ष चला रहे हैं । वहाँ जाकर समन्वय द्वारा शान्ति की स्थापना करने का काम क्या भारत करेगा ? अेक ग्रथ, अेक पैगबर और अेक ही किसम की साधना को जो मानते है, वे आखिरकार बनते है अेक-अेक पथ । व्यापक धर्म तो सब पैगबरो की वाणी को आदर के साथ स्वीकार ही करता है ।

स्वामीजी केवल दार्शनिक तत्त्वज्ञानी ही नही थे, सगीत भी अच्छा जानते थे, बजवैये भी थे । गाने बजाने के अतिरिक्त वे कुश्ती करना भी जानते थे । जितना काम दस बरस मे नही किया जा सकता अुतना काम अेकअेक वर्ष मे अुन्होने किया । अिस लिअे मै कहता हूँ सच्चे

अर्थ मे स्वामी विवेकानद युग-पुरुष थे। केवल भारत के ही युग-पुरुष नही, सारे जगत के युग-पुरुष थे। आज अुन के जीवन से, अुन के कार्य से और अुन के साहित्य से हम प्रेरणा ले।

स्वामीजी ने केवल पढने की बात नही कही है। अुन्हो ने कहा है कि हमे ग्रथ पढना है और अुसका सार ग्रहण कर के काम करना है। जिस तरह खेतो से हम धान घर ले आते है और घास को अलग कर देते हैं, अिसी तरह हमे करना चाहिये। शास्त्रो मे लिखा है—**ग्रन्थं अभ्यस्य मेधावी, ज्ञान-विज्ञान-तत्पर: पलाल अिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थम् अशेषत.**। हमे कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि के द्वारा जीवन को सपूर्ण करना है। अिस का हमे अनेक रूप मे विस्तार करना है। अैसा करेंगे तब हम अपने को कृतार्थ करेंगे। अैसा प्रयत्न हम करते रहे और साथ साथ प्रार्थना करे कि सब स्त्री-पुरुष के हृदय मे स्वामीजी नये से जन्म ले।*

---

* स्वामीजी के जीवन कार्य के विशेष अध्ययन के लिअे मैने कहा ही है कि श्री रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानद और भगिनी निवेदिता तीनो मिल कर अेक त्रिपुटी होती है। हरअेक के विषयमे काफी साहित्य प्रकाशित हुआ है। श्री रामकृष्ण के कअी जीवन-चरित्र लिखे गये है। मॅक्समूलर से लेकर महेन्द्रनाथ गुप्त और शारदानन्द तक अनेको ने श्री रामकृष्ण के वचन, कथामृत और लीला-प्रसगो का सग्रह किया है। निखिलानन्द की लिखी हुअी रामकृष्ण जीवनी को महात्माजी की प्रस्तावना भी है।

स्वामी विवेकानन्द के बारे मे भगिनी निवेदिता ने जो किताब लिखी है—The Master as I saw him, अुस का महत्त्व तो अपूर्व है। विवेकानन्द के ग्रन्थ, लेख, भाषण और खतपत्रों का सम्पूर्ण संग्रह तो मिलेगा ही। फ्रेंच साहित्यस्वामी रोमे रोला ने अिन गुरुशिष्यों के जीवनकार्य के बारे में असाधारण सहानुभूति

के साथ लिखा है। स्वामी-शिष्य सवाद Inspired Talks आदि किताबे तो है ही। अिन के अलावा स्वामीजी के गुरुभाअियो ने और पूर्व ओर पश्चिम के शिष्यो ने जो लिखा है वह भी महत्त्व का साहित्य है। अमेरिका के मानस-विज्ञान-वेत्ता विल्यम जेम्स ने स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को The Religion of Healthy-mindedness कहा है।

भगिनी निवेदिता (Miss Margart Noble) ने जो साहित्य लिखा है वह तो भारत के लिअे अुन की कीमती देन है The Web of Indian Life जैसी भारत-भक्ति की किताब सारी दुनिया मे दूसरी मिलना मुश्किल होगा। रामकृष्ण मिशन की ओर से प्रकाशित निवेदिता की जीवनी भी भारत की सब भाषाओ मे आनी चाहिये।

'भावबार कथा' जैसी स्वामीजी की कोअी बगाली किताब शायद अग्रेजी में अथवा हिन्दी मे भी नही आयी है। अैसे सब साहित्य की अेक सम्पूर्ण फेहरिस्त सबसे पहले प्रकाशित होनी चाहिये।

लेकिन अेक विशाल सागर जैसा यह साहित्य आज सबका सब पढेगा कौन ? लोग अिस की जिल्दें खरीदकर अपने-अपने पुस्तकालयो की शोभा और प्रतिष्ठा बढायेंगे। बेहतर तो यह होगा कि अिस सारे साहित्य के निचोड के रूप में दो-तीन ग्रन्थ बनाये जाय, जिस के अन्दर अिस त्रिपुटी के साहित्य का सार और भविष्य के लिअे अुन की प्रेरणा सगृहीत हो। वही आज का जमाना कृतज्ञता के साथ पढेगा।

१ जनवरी १९६३

गोखले जी को श्रद्धांजलि

किसी भी मनुष्य का जीवन देखिये, अुस मे परिवर्तन होते ही रहते है। जीवन ही परिवर्तन है। जीवन ही प्रगति है I प्रति वर्ष, प्रति दिन और प्रति क्षण मनुष्य का अनुभव बढता जाता है, मनुष्य की दृष्टि विशाल होती है, और मनुष्य का जीवन विकसित होता जाता है। विद्यार्थी गोखले की अपेक्षा अध्यापक गोखले आगे बढे, अर्थशास्त्री गोखले की अपेक्षा माननीय गोखले अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुअे, माननीय गोखले की अपेक्षा राष्ट्र-नायक गोखले अधिक श्रेष्ठ ठहरे। अिस तरह गोखलेजी की श्रेष्ठता दिन प्रतिदिन बढती ही गयी।

साधारण लोग समझते हैं कि—मनुष्य मृत्युतक ही बढता है, लेकिन वह गलत है। जीवित गोखले की अपेक्षा राष्ट्र के हृदय मे बसनेवाले आज के गोखलेजी कअी गुना श्रेष्ठ हैं। जीवित गोखले रोज सोते थे, काम करके थक जाते थे, अूब जाते थे, कभी खीझ भी अुठते थे। लेकिन आज के गोखले—हृदयस्थ गोखले—आदर्श है, आज की अुन की देशसेवा अमर्याद और अखड है, वह दिन-दिन अूपर बढती जायगी और विशुद्ध होती जायगी।

यह शक्ति किस की है? यह शक्ति श्राद्ध की है। श्राद्ध का मतलब केवल स्मृति नही, श्राद्ध का अर्थ अितिहास का अध्ययन नही, बल्कि अमृतसजीवनी है। स्मृति दुख रूप होती है, और दुख की तरह वह अल्पजीवी भी होती है। जिस तरह दुख का अन्त होता है, अुस तरह स्मृति भी मिटती जाती है। जिस तरह दुख हमे दुर्बल बनाता है, अुसी तरह स्मृति भी हमे करुणा-पेलव कर डालती है। अितिहास

का भी यही हाल है। अितिहास न चलता है, न बढता है। अितिहास की स्थिरता मारक होती है। अितिहास मे जीवन नही होता। अितिहास अेक पुतला है, अेक तसवीर है। छोटी-सी बालिका जब प्रसन्नतापूर्वक हँसती है, तो अुसमे कितना अपूर्व चैतन्य, माधुर्य और पावित्र्य होता है। लेकिन अुसी हास्यकी तसवीर खीचो, या मूर्ति बनाओ और देखो, तो अुसकी स्थिरता ही सारे सौन्दर्य को निष्प्राण कर डालती है। अितिहास का भी यही हाल है। अितिहास सत्यके वर्णन को स्थिर करने जाता है, और अुसी प्रयास मे स्वय मृतस्वरूप बन जाता है। अितिहास सत्यका प्रेत है। अिति-हास व्यक्ति या राष्ट्रके स्वरूपको स्थिर करके अेक तरहमे अुमे निर्जीव बना देता है।

श्राद्ध अिस से अलग ही चीज हे। श्राद्ध मृत व्यक्तिको अमर बनाता है। रामायण और महाभारत अितिहास नही, बल्कि श्राद्ध है। अिसीलिअे ये राष्ट्रीय ग्रथ, युगो से अिस राष्ट्र मे प्राण डालते आये है। अितिहास मे यह शक्ति कहाँ? हम वार्षिक श्राद्ध द्वारा पूज्य व्यक्ति को दिन-प्रति-दिन अधिक राष्ट्रीय बनाते हैं। सन् १८६६ से १९१५ तक जीने वाले गोखलेजी कैसे थे, अिसका यथार्थ चित्रण अितिहास भले ही करके रखे, हमे अुसकी परवाह नही। जो गोखलेजी आज हमारे हृदयमे हैं, उन्हीके दर्शन हम करे, अुन्हीसे देश-सेवा की दीक्षा ले ले। अुस समयके गोखलेजी हमसे कहते थे—'ज्यादा पैसे देकर भी स्वदेशी कपडे ही पहनो।' वे ही गोखलेजी गाधी युगमे आज हमारे हृदयमें प्रवेश करके हमसे कह रहे है—'पैसेका खयाल ही मत करो, खादी ही पहनो।' हृदयस्थ गोखलेजी कहते हे—'मै अर्थशास्त्रका अध्यापक था, लेकिन आज मै तुमसे कहता हूँ कि 'धर्मशास्त्रके आगे अर्थशास्त्र गौण है।' खादी पहननेवाले हिंदुस्तानका कभी आर्थिक अकल्याण होनेवाला नही है, क्योकि खादी मे धर्म है।"

सरयू नदीके किनारे रहनेवाले रामचन्द्रजी ने क्या किया, अुनका

जीवन कैसा था, आदि बाते हमको मालूम हो नही सकती, न हमे अुन की आवश्यकता ही हे । लेकिन वाल्मीकिके प्रतिभा-स्रोतसे जन्मे हुअे और आर्यावर्तके हृदयपर राज्य करनेवाले राजा रामचन्द्रको ही हम जानना चाहते है, क्योकि अैतिहासक रामकी अपेक्षा वाल्मीकिके सास्कृतिक रामने ही भारतवर्षका अधिक कल्याण किया है। शकुतलाकी भावगम्य छविको चित्रित करते समय जैसे-जैसे शकुन्तलाका ध्यान वढता जाता था, वैसे-वैसे विरही दुष्यन्त 'यद्यत्साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत् तद्अन्यथा' कहकर हेरफेर करता ही जाता था, और फिर भी वह तसवीर तो शकुन्तलाकी ही रहती थी। यही बात हम राष्ट्रीय पुरुषोके श्राद्ध मे करते है, हम अुनका राष्ट्रीय सस्करण बनाते हैं।

अैसा करनेमे जितना लाभ है, अुतना खतरा भी है। पवित्र पुरुषोकी स्मृति अेक तरहकी विरासत है। अुसे हम वढा भी सकते हे ओर बिगाड भी सकते है। कीमती विरासत के साथ हमपर भारी जिम्मेदारीका भान ही हमारे लिअे प्रेरक और तारक होना चाहिये।

आजके श्राद्धके दिन मुझे गोखलेजीके विषय मे कुछ कहना चाहिये, लेकिन सच कहूँ, तो मैने अैतिहासिक दृष्टिसे या अध्ययनकी दृष्टिसे गोखलेजी का जीवन न कभी देखा है, न पढा है। गोखलेजी को मैंने वहुत बार देखा भी नही। किसी फरिश्तेके दर्शनकी तरह मैं अुन्हे दो-चार बार ही देख पाया हू। अुस समयकी स्मृतिको मैने श्राद्ध की भूमिमे सग्रहीत करके रखा है— नहो, सग्रहीत नही किया, बल्कि बो दिया है। अिस बीजको समय-समय पर सिचन मिला है, जिससे वह अकुरित होकर अनेक प्रकार से फला है।

गोखलेजी का पहला दर्शन—मुझे फर्ग्युसन कालेज, (पूना) की मारफत हुआ। जब मै अुस कॉलेजमे गया तब, गोखलेजी वहाँ नही थे, लेकिन वहाँ का वायुमण्डल गोखलेमय था। सब जगह गोखलेजीकी छाप दिखाअी देती थी।

फर्ग्युसन कॉलेज यानी वाद-विवाद का कुरुक्षेत्र ! पूनामे जितने पक्ष है, अुतने ही नही वल्कि अुमसे भी अधिक पक्ष फर्ग्युसन कॉलेज के विद्यार्थी-निवास (होस्टेल) मे दिखाअी देते है। जब मै पहले-पहल फर्ग्युसन कॉलेजमे गया, तो मेरी हालत वैसी ही थी, जैसी पहली बार शहरमे आनेवाले देहाती विद्यार्थीकी हुआ करती है। छात्रावासमे प्रत्येक पक्षके हिमायती मेरे पास आते, और मुझे अपने मतोको निश्चित करनेमे 'मदद' करते। पूनामे कोअी भी व्यक्ति पक्षरहित नही रह सकता। वहाँका वायुमडल अैसे आदमी को वरदाश्त ही नही कर सकता। फर्ग्युसन कॉलेजके छात्रावासमे मैने गोखलेजी की निन्दा और स्तुति दोनो अितनी अधिक मात्रा मे सुनी कि किसी निर्णय पर पहुँचना मेरे लिअे असभव हो गया। मेरे मनमे अितना निश्चय तो अवश्य हुआ कि गोखलेजी चाहे जैसे हो, फिर भी वे अेक जानने लायक व्यक्ति तो जरूर है। अुनकी निन्दा और स्तुतिने परस्पर-विघातक कार्य किया, अिसलिअे मै अुनसे अछूता रह गया। मनमे अितनी भावना अवश्य रह गयी थी कि गोखलेजी वडे देश-सेवक तो है, फिर भी अुन्होने अुन गोरे सिपाहियोसे जो माफी माँगी, वह तो अुनके लिअे कलकरूप ही है। सबूत न मिलनेसे क्या हुआ ? मेरा यह मत बहुत वरसोतक रहा। आज वह वैसा नही है, सार्वजनिक जीवनके स्मृति-शास्त्र को अब मै अधिक अच्छी तरह समझने लगा हूँ।

कांग्रेसकी तरफसे विलायतमे प्रकाशित होनेवाला 'अिण्डिया' नामका पत्र मै कॉलेजमे बहुत ध्यानसे पढा करता था। अिसलिअे गोखलेजी विलायत मे जो भाषण देते, मद्यनिषेधकी जो योजनाये बनाते और अपने देश के लिअे कनाडा जैसा जो 'सेल्फ गवर्नमेट' (स्वशासन) माँगते, अुन सभी बातो से परिचित रहता था, और अुससे गोखलेजीके प्रति मेरे मनमे धीरे-धीरे श्रद्धा अुत्पन्न होती थी। आखिर अेक दिन अैसा आया, जब मैने सुना कि आज गोखलेजी कॉलेज मे आनेवाले है। यह तो अब याद नही कि वह कौनसा अवसर था।

गोखलेजीकी प्रसन्न-गभीर मूर्त्ति मचपर खडी हुअी थी। अुनकी भाषा या अुनकी आवाजमे शास्त्रोक्त वक्ता की चमत्कृति या चमक नही थी, लेकिन अुनकी भाषामे सस्कारिता तथा देश-कल्याण और देश-सेवाकी लगन ओतप्रोत थी। अुनके स्वरमे अत करणकी अुत्कटताका गुजन था। यह स्पष्ट रूपसे दिखाअी दे रहा था कि यह हमेशा अुदात्त वायुमडलमे विहार करनेवाली कोअी विभूति है। और फर्ग्युसन कॉलिज तो अुन्हीके हाथो परवरिश पाया हुआ गोकुल था। अिसलिअे अुनके अुपदेशमे अधिकार और वात्सल्य समान रूपमे भरे हुअे थे। अुस दिनका व्याख्यान तो मै अब भूल गया हू, पर व्याख्यानका असर अभी कायम है। अेक ही बात अभी अच्छी तरह याद है। अुन्होने कहा था—"आपको मालूम है कि आय-कर लेनेवाले सरकारी कर्मचारी हर साल आपके दरवाजे आते है, और आप लोगोसे सरकारी कर वसूल करके चले जाते है। आज देशके नामपर अैसा ही अेक 'टैक्स-गैदरर' (कर वसूल करने अुगाहनेवाला) मै आपके दरवाजे आकर खडा हूँ। मुझे पॉच फीसदी के हिसाब से कर चाहिये। लेकिन वह पैसो का नही, नवयुवकोके श्रद्धावान् जीवनका। मै चाहता हूँ कि अिस महाविद्यालयमे पढनेवाले युवक विद्यार्थियोमेसे पॉच फीसदी विद्यार्थी देशसेवाके लिअे अपना जीवन समर्पित करे। अैसा होने पर ही मुझे सन्तोष होगा।"

कितनी महत्त्वपूर्ण मॉग, और फिर भी कितनी कम! अुस दिन मेरे हृदयमे नया प्रकाश आया, विचारोको अेक नयी दिशा मिली, और मै कुछ अशोमे द्विज बना। अिसी अरसे मे गोखलेजी बनारसमे काग्रेसके अध्यक्ष बने। बनारसकी भोलीभाली जनताने 'पूनाका राजा' कहकर अुनका स्वागत किया। अुस समयका अुनका भाषण कुछ अैसा सपूर्ण था कि कअी बार पढनेपर भी मुझे सन्तोष न हुआ। अिसके बाद बग भगके खिलाफ आन्दोलन बढा। स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्यका चतुर्विध आन्दोलन जोरके साथ जाग अुठा। मै अुसमे बह गया। विपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोषने मेरे हृदय पर कब्जा कर लिया, और गोखलेजीकी

छाप मिटती गयी। मै यह भी भूल गया कि मुझमे देश-सेवाकी ज्योति गोखलेजीने प्रज्वलित की थी। अिसके बाद सूरतमे गृहयुद्ध हुआ। अुस समयके दोनो पक्षोके अखबार पढकर मुझे निराशा हुअी। अुन अखबारोमे अितनी अधिक क्षुद्रता दिखाअी देती थी कि अुसे दुर्गन्धकी अुपमा दी जा सकती है। अुसके बाद राजनीति कुछ अजीब ढगसे बहने लगी। सरकार पागल हो गयी, और हमारे दोनो पक्ष अीर्ष्या, असूया और हिंसासे सराबोर हो गये। अिसका भी मुझपर बहुत असर हुआ। राष्ट्रीय पक्षके तत्त्व मुझे पसन्द थे, अराजक लोगो का युक्तिवाद मुझे यथार्थ प्रतीत होता था, फिर भी नरमदलके नेताओके बारेमे जो निन्दार बीभत्स लेख और चित्र अखबारो मे निकलते थे, अुनसे मुझे सख्त नफरत मालूम होती थी। असूयावृत्ति समाजमे अितनी अधिक बढ गयी कि गोखलेजीको 'हिन्दूपच' पत्रके खिलाफ मानहानि की नालिश दायर करनी पडी। मुझे यह बात बिल्कुल अच्छी न लगी कि महान् गोखलेजी 'हिन्दू-पच'—जैसे क्षुद्र पत्रके खिलाफ मानहानिका मुकदमा चलाकर अुससे माफी मँगावाये। आज वह बात तो मेरी समझमे आती है कि गोखलेजीने ब्रिटिश सोल्जरोसे जो माफी माँगी थी, अुससे अुनकी महत्तामे वृद्धि हुअी थी, लेकिन मैं मानता हूँ कि 'हिन्दूपच' से क्षमा-याचना करानेमे गोखलेजीने कुछ भी हासिल नही किया। लेकिन अिसमे गोखलेजीकी अपेक्षा मै अपने-जैसे लोगोका ही दोष अधिक देखता हू। गोखलेजीकी अभद्र निन्दा सुनकर तिलमिला अुठनेवाले मेरे-जैसे बहुतसे लोग होगे। लेकिन हम चुपचाप बैठे रहे। अगर हमने अुस समय प्रकटरूपसे अिस तरहकी निन्दाका निषेध किया होता, तो गोखलेजीको अपने समाजके विषयमे अितना अधिक निराश न होना पडता।

अिसी अरसेमे बम्बअीमे कायस्थ प्रभुज्ञातिकी महिलाओने अेक कला-प्रदर्शनीका आयोजन किया था, और गोखलेजी द्वारा अुसका अुद्घाटन होनेवाला था। कलाके विषयमे भी अुन्होने सोच रखा था। मै

अुनका वह भाषण सुनने गया, और वहाँ मैंने गोखलेजी को पहले-पहल मराठीमे बोलते सुना। अुसी समय मनमे विचार आया कि अगर यह राष्ट्र-पुरुष लेजिस्लेटिव कौन्सिलकी अपेक्षा समाजमे, और अंग्रेजीके बदले मराठीमे काम करे, तो अिसकी देश-सेवा भी बढे और कीर्ति भी बढे। लेकिन फिर मुझे अैसा लगा कि लेजिस्लेटिव कौन्सिलमे ठोस काम करनेवाले लोग कम थे। शायद अिसीलिअे गोखलेजीको कौन्सिलमे अधिक समय देना पडा होगा।

अन्त्यजोद्धारके बारेमे अुनका अेक भाषण अिसी अरसेमे मैंने बम्बअीके टाअुनहॉलमे सुना। अुसके बाद देशमे आतकवादी प्रवृत्तियाँ बढी। लोकमान्य मॉडले जेलमे 'गीता-रहस्य' लिखते थे, और देशमे ग्लानि फैल गयी थी। मै गुजरात गया, और वहाँ थोडे दिनोतक अध्यापनमे व्यस्त रहा। गोखलेजी कहाँ है, क्या करते है, अिसके बारेमे मै कुछ भी जानता न था। रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, भगिनी निवेदिता आदिके ग्रथोमे ही मेरी दिलचस्पी बढ गअी थी। सन् १९११ या '१२ मे भगिनी निवेदिताका स्वर्गवास हुआ, अुस समय गोखलेजी की अेक श्रद्धाजलि प्रकट हुअी। वह छोटी ही थी, पर अितनी सुन्दर थी कि मेरी श्रद्धा पुन जाग अुठी। मुझे न्यायमूर्ति रानडेपर दिये गये अुनके भाषणो और लेखोका स्मरण हो आया, और गोखलेजीके प्रति मेरे हृदयमे जो आदर सोया हुआ था, वह फिर जाग्रत हुआ। मै गोखलेजीका अधिक अध्ययन करने लगा। विद्यार्थी और राज-नीति, हिन्दू-मुस्लिम अेकता के प्रश्न 'दुनियाके समस्त राष्ट्रोकी काग्रेसमे हुआ अुनका भाषण, आदि पढकर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि गोखलेजी पाँच-दस सालका विचार करनेवाले 'पॉलिटीशियन' (राज-नीतिज्ञ) नही, दीर्घदृष्टिसे राष्ट्र-हितका विचार करनेवाले अेक राष्ट्रो-द्धारक है। खासकर हिन्दू-मुसलमानोकी अेकताके विषयमे अुन्होने जो नीति अख्तियार की थी, अुसे देखकर ही अुनके ध्येय और अुनकी

दीर्घदृष्टिका मुझे पूरा यकीन हो गया। वे यह देख सके थे कि हिन्दू-मुसलमानोकी अेकता ही भारतीय राजनीतिकी बुनियाद है। अिस अेक कार्यके लिअे भी हिन्दुस्तानको गोखलेजीके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिअे।

वे देशकी राजनीतिको जड-मूलसे शुद्ध और आध्यात्मिक बनाने के आग्रही थे। देशकी स्थितिको देखते हुअे गोखलेजीने यह महसूस किया कि जबतक रात-दिन देश की सेवाका ही विचार करनेवाले लोगो का वर्ग देशमे पैदा न होगा, तबतक देशकी राजनीति अिसी तरह भटकती रहेगी। अपने अनुभवसे वे यह बात अच्छी तरह देख सके थे कि 'दुनियादार बनने और फुरसतके वक्त देशसेवा करनेकी वृत्तिसे देश-सेवा नही हो सकती'। दूसरी अेक चीज जो हिन्दुस्तानियोके स्वभावमे—भारतीय सस्कृतिमे—अनादि कालसे चली आयी हे, अुसे अुन्होने विशेष आग्रहके साथ देश-सेवाके काममे भी दाखिल किया और देशके सामने विशेष रूपसे रखा। वह चीज थी 'गरीबीका महत्त्व'। देश-सेवाके लिअे पैसेकी जरूरत है, पैसेके बगैर किया हुआ काम अटक जाता है, सदुपयोग करनेपर अेक हदतक सपत्ति आशीर्वाद-रूप बन सकती है, सो सब सच है। फिर भी देश-सेवक स्वय जिस हदतक निर्धन रहेगा, अुस हदतक अुसकी देश-सेवा अधिक ठोस होने की सभावना रहती है। गोखलेजी अिस बातको अच्छी तरह जानते थे। बाबा-बैरागी बनकर यात्रा करते हुअे घूमना अपेक्षाकृत आसान है, लेकिन समाजमे घुलमिलकर, समाजको साथ लेकर देशोन्नति के कार्य करना, देशका नेतृत्व करना और साथ ही आकिंचनत्व का व्रत लेकर थोडेमे गुजारा करके, द्रव्यलोभको अेक तरफ रखकर निस्पृहताकी आदत डालना, बहुत मुश्किल है। जो लोग विद्वान् होते हुअे भी नम्र, गरीब होते हुअे भी तेजस्वी, और तपस्वी होते हुअे भी दयालु है, वे ही समाजपर, और खासकर भारतीय समाजपर प्रभुत्व प्राप्त कर सकते है। धन कमानेकी शक्ति होनेपर भी जो मनुष्य गरीबीको

पसन्द करता है, लाखो रुपये हाथमे होते हुअे भी जो पैसे से मिलनेवाली सहूलियतोका अुपयोग करनेके लालचमे नही फँसता, वही मनुष्य समाज की सच्ची सेवा कर सकता है। और स्वय स्वतत्र रह सकता है। गरीबीका आदर्श सामने न रहनेपर देश-सेवक, पैसेका सेवक, पैसे-वालेका आश्रित और देश-हितका द्रोही भी बन जानेका डर रहता हे।

गरीबीके आदर्शके साथ अखड अुद्योगका व्रत न रहे, तो वह गरीबी जडताका रूप धारण कर लेती है। तमोगुणी गरीबी किसी कामकी नही। मनुष्य सन्तोष रखकर अपने निजी मतलबके लिअे या अैश-व-अिशरतके लिअे चाहे मेहनत न करे, लेकिन अुसे मेहनत तो करनी ही चाहिअे। सकाम हो या निष्काम, कर्म तो किया ही जाना चाहिअे। अगर हम कर्म न करे, तो हमे जीनेका कुछ भी अधिकार न रहे। परिश्रम करनेका अवसर न मिलना औश्वरका सबसे बडा शाप समझा जाना चाहिये। यह सोचना ठीक नही कि अुद्योग सिर्फ पेट भरनेके लिअे है। मै मानता हूँ कि अुद्योग तो जीवनका आनन्द है, कायिक, वाचिक और मानसिक शक्तियोको विकसित करने का साधन है, और पवित्रता तथा मोक्षकी साधना है। देशभक्तिको फुरसतका वक्त बितानेका अेक अुपाय, या नाम कमानेका अेक तरीका समझकर कोअी व्यक्ति या सस्था अखड रूपसे देशकी सेवा कर ही नही सकती। दिखावेके लिअे किआ हुआ काम भडकीला चाहे हो लेकिन वह ज्यादा देरतक टिक नही सकता।

देश-सेवा करने का प्रथम और मुख्य अुपाय यही है कि हम अपना जीवन निष्पाप बनावें। समाज मे जो दु ख हम देखते है, अुनमे आधेसे भी अधिक दु ख तो स्वय हमारे ही पैदा किये हुअे होते है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन सुधारनेका प्रयत्न करे, तो समाज-सेवक-का बहुत-कुछ काम हलका हो जाय। दूसरी दृष्टिसे देखें, तो जब तक हम स्वय निष्पाप नही बनते, हमे समाज-सेवाका अधिकार या

सामर्थ्य प्राप्त ही नही हो सकता। अिस बातका अनुभव करके ही गोखलेजीने भारत-सेवक-समाज (सर्वेण्ट्स ऑव् अिण्डिया सोसाअिटी) की योजना मे और कार्यप्रणालीमे सादगी, गरीबी, आज्ञाकारिता आदि व्रतोको विशेष रूपसे स्थान दिया है।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीका जानेका हाल तो सबको मालूम ही है। अुस समय जनरल स्मट्स और गाधीजीके बीचकी बातचीतके सम्बन्धमे जब गलतफहमी पैदा हुअी, तो विलायतके पत्रोको हमारे गोखलेजी ही अधिक विश्वासपात्र आप्त मालूम हुअे। यह देखकर मेरा हृदय अभिमानसे फूल अुठा, और मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यह गोखलेजीके निर्मल चरित्रका ही प्रभाव है। दक्षिण अफ्रीकाका काम बढा। महात्माजीने वहाँ युद्धकी घोषणा की और हिन्दुस्तानमे देशभक्त गोखलेजीने अुस यज्ञके लिअे ब्राह्मणोचित भिक्षा माँगना शुरू किया। वह अपूर्व अवसर मेरी स्मृतिमे आज भी ताजा है।

वह यज्ञ पूरा हुआ। गाधीजी हिन्दुस्तान वापस आये, और कवीन्द्रसे मिलने शान्तिनिकेतन गये। वहाँ गाधीजीका स्वागत हो ही रहा था कि अितनेमे गोखलेजीके परलोक सिधारनेका तार मिला। शान्तिनिकेतनके अेक आम्रवृक्षके नीचे हम कुछ लोग गाधीजीके आसपास बैठे थे। अुस समय गाधीजीकी ऑखो मे आँसू तो नही थे, किन्तु आँसुओसे भी मृदु और गभीर श्रद्धाका सागर छलक रहा था। अुन्होने हमे गोखलेजीके जीवनकी धार्मिकता समझायी। राजनीति के लिअे भी हमे अपनी खानदानियतका त्याग नही करना चाहिये, गोखलेजीके अिस आग्रहका रहस्य अुन्होने हमे समझाया, और अुसी क्षण गोखलेजीकी श्रद्धा-निर्मित मूर्त्तिकी मेरे हृदयमे प्रतिष्ठापना हुअी। मै गोखलेजीका अनुयायी नही हूँ, उनका शिष्य भी नही हूँ, लेकिन अुनके शिष्यका शिष्य हूँ, गोखलेजीका पूजक हूँ और अुनको समझनेकी कोशिश करता हूँ। गोखलेजीके सच्चे अनुयायियोकी देश-

सेवा, धर्मनिष्ठा और निडरता देखकर मनमे गोखलेजी की मूर्त्ति अधिका-धिक स्पष्ट और दृढ होती जा रही है। आज अुस मूर्त्तिका ही श्राद्ध कर रहा हूँ और अुस मूर्त्तिसे आशीर्वाद माँग रहा हूँ।

यह जानकर कि भगिनी-समाज अिस मूर्त्तिका अेक मदिर है, मै यहाँ अपनी श्रद्धाजलि लेकर आया हूँ। गोखलेजी की देश-भक्ति अुनकी देश-सेवासे बडी थी। पचास सालसे भी कमकी आयुमे अुनकी देश-भक्तिको पूर्ण अवसर कहाँसे मिलता? शिक्षा और राजनीतिके दो क्षेत्रोमे ही अुन्होने देश-सेवाकी थी। लेकिन जो भी की, सुदर और अुज्ज्वल थी। फिर भी अुन्हे अुससे सतोष न था। वे हमेशा कहा करते थे कि काम के पहाड पडे है, जिन्हे अुठानेके लिअे हजारो देश-सेवकोकी जरूरत है। स्त्री-शिक्षाके महत्त्वपूर्ण विभागकी गोखलेजीकी देशभक्ति भगिनी समाज द्वारा कार्यमे परिणत हो रही है। अिसीलिअे मै अिस मदिर मे श्राद्ध करने आया हूँ। आपने मुझे आजका यह अव-सर दिया, अिसे मै आप सबका प्रसाद ही समझता हूँ।

१९-२-२२

—※—

दीक्षागुरु

महात्मा गाधी जिन्हे अपने राजनैतिक गुरु कहते थे अुन गोपाल कृष्ण गोखलेका जन्म सन् १८६६ के मअी महीने मे ९ तारीख को हुआ था। जब मेरे अेक मित्र अिन के जन्मस्थान मे जाकर अुन के समकालीन सहयोगियो से पूछने लगे कि गोपाल कृष्ण गोखले के कुछ सस्मरण कहिये तब अुन ग्राम-जनोने हँसकर कहा, "हमे क्या पता था कि हमारा 'गोप्या' आगे जाकर किसी दिन बडा आदमी बनने वाला है! पता होता तो हम अुस की कुछ बातें याद रखते।" दुनिया मे अैसे कितने पुरुष होगे जिनके जन्म के समय लोगो को पता चलता है कि आगे जाकर ये महान् बननेवाले है!

अग्रेज लेखक जिसे सिपाहियो का गदर कहते है अुस ५७ साल के 'आजादी के असफल प्रयत्न' के बाद दस बरस भी न बीते थे कि गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म हुआ। किसी असफल प्रयत्न के बाद जनता कितनी मायूस हो जाती है और सब तरह के प्रयत्न ही कैसे छोड देती है अिसका ख्याल आसानी से हो सकता है। ५७ साल के गदर मे जो शरीक हुये थे अुनमे से कअी लोगो ने सन्यास लिया और वे हिमालय की ओर चले गये। कअी लोग अग्रेजो से दक्षिणा पाकर ललकारने लगे

"धरा तळी अिंग्रजा सारिखा प्रभु नाही दूसरा"

अैसे समय पर पुराना रुख बदल कर नये ढगसे फिर प्रयत्न करनेवालो मे और असफलता पाने पर भी निराश न होनेवालोमे गोखलेजी का नाम अवश्य गिना जायगा। अुन्ही के अेक वचन का कुछ विस्तार

करके अुन के प्रति अेक भक्तिपूर्ण श्रद्धाजलि आज अर्पण करना चाहता हूँ।

कोअी वैज्ञानिक जब प्रयोगशाला मे प्रयोग करता है तब पहले प्रयोग मे थोडे ही अुसे सफलता मिलती है। अनेक बार प्रयोग करने के बाद आशा निराशा के बीच चक्कर काटने के बाद किसी धन्य क्षण सफलता मिलती है। अिसीलिये सफलता की व्याख्या किसी ने की है "असफलता की दीर्घ यात्रा की आखिरी मजिल है सफलता।"

न्यायमूर्ति रानडे के शिष्य और महात्मा गाधी के राजनैतिक गुरु श्री गोपाल कृष्ण गोखले अपने बारे मे कहा करते थे कि 'सफलता पूर्वक भारत की सेवा करने का भाग्य किसी दिन किसी को अवश्य मिलेगा। मेरे नसीब मे तो असफलता द्वारा ही भारत की सेवा करने का बदा है। तो भी मै भारत की सेवा करता ही रहूँगा।'

जब सन् १९०५ मे गोखले अपनी आयु के ३९ वर्ष पर बनारस मे काँग्रेस के सभापति हुये तब लोगो मे काँग्रेस के बारे मे अितना अज्ञान था कि जब अध्यक्ष का जुलूस निकला तब बनारस के लोग कहने लगे कि 'पूना के किसी राजा' का यह जुलूस है।

गरीबी की दीक्षा लेकर भारत की सेवा करने का व्रत सेवको का लेनेवाले जिस ने सगठन किया, और सर्वेट्स ऑफ अिडिया सोसायटी की स्थापना की, अुसे सामान्य जनता पूना का राजा कहे यह भी अेक भाग्य का खेल ही है।

भारतीय सस्कृति का जब हम गौरवपूर्ण वर्णन करते है तब कहते है कि हमारे देशने गरीबी को भी तेजस्वी बनाया और ज्ञान की अुपासना करनेवाले अकिचन लोगो को समाज मे सर्वोच्च स्थान दिया। अैसी Intellectual Aristocracy of Paupers की सनातन परम्परामे श्री गोखले का जन्म हुआ। दो कुरते पास न होने से रात को

कुरता अुतारकर धो लेना और सुबह वही फिर से पहनना, अैसी हालत मे गोपाल का बाल्य काल पूरा हुआ। सत्यनिष्ठा और तेजस्विता अिस बाल गोपाल के खास गुण थे। पढायी मे कमजोरी न रहे अिस वास्ते गोपाल सब के सब पाठ कठ करते थे। सहपाठी विद्यार्थी अुसे जलील करने के लिये 'पाठ्यागोप्या' कहते थे। लेकिन बचपन मे अिस तरह सधाअी हुअी स्मरण शक्ति गोपाल को बडी मददगार साबित हुअी। बम्बअी के गवर्नर के सामने या कलकत्ता मे वाअिसराय के सामने जब गोपाल कृष्ण गोखले तकरीर करते थे तब बडे-बडे अग्रेज अफसरो को भी कबूल करना पडता था कि मिस्टर गोखले अपने हरेक विषय के पूरे माहिर है। भारत सरकार के प्रधान सेनापति लार्ड किचनर ने अेक दफा कहा था कि 'अग्रेजी साहित्य मे जिस कृति को मि गोखले नही जानते वह निश्चय ही जानने लायक नही है।'

अपनी कॉलेज की पढाअी पूरी होते ही लोकमान्य तिलक के प्रभावमे आकर श्री गोखले जी ने फर्ग्युसन कॉलिजमे प्रोफेसरी करना मजूर किया। वे थे तो प्रोफेसर लेकिन प्रिन्सिपल के सब अधिकार अुन्ही के हाथमे रहते थे।

गणित, अग्रेजी साहित्य, अितिहास और अर्थशास्त्र अिन विषयो मे गोखलेजी को खास दिलचस्पी थी। न्यायमूर्ति रानडे ने अुन्हे राजनीति की दीक्षा दी और वे लेजिस्लेटिव कौन्सिल मे जाकर काम करने लगे। सालाना बजट पर, जब नामदार गोखले का भाषण होता थ।, तब देश के अनेक नेता ही नही किन्तु अनुभवी अग्रेजी अफसर भी, अुसे ध्यानपूर्वक सुनने अिकट्ठा होते थे। गोखले जिस विषय पर बोलते थे, पूरी मेहनत करके, हर पहलू की जानकारी हासिल करने के, बाद ही बोलते थे। सन् १९०२ से १९०४ तक वाअिसराय लार्ड करजन की नीति पर युक्ति-युक्त प्रहार करने का काम गोखले जी ने बडी निडरता से किया। तो भी अिनकी की हुअी समालोचना सौम्य ही रहती थी।

अुन दिनो देश मे राजनैतिक क्षेत्र मे 'नरम' और 'गरम' अैसे दो दल थे। अिन दोनो के बीच विचारभेद के कारण हमेशा कुछ न कुछ झगडा रहता ही था। न्यायमूर्ति रानडे की धार्मिकता और भक्तवृति गोखलेमे नही दीख पडती थी। लेकिन जब गाधीजी गोखले से मिले, तब गाधीजा अुनमे अुच्च कोटि की आध्यात्मिक वृत्ति देख सके।

राजनैतिक क्षेत्र मे गोखलेजी ने प्राथमिक शिक्षा सार्वत्रिक, मुफ्त और लाजिमी Free and compulsory 'फ्री अेन्ड कम्पलसरी' कराने के लिये अथक प्रयास किये। नमक के अूपर जो सरकारी टैक्स था अुसे कम कराने की कोशिश भी की। जब गाधीजी ने दक्षिण अफ्रिका मे सत्याग्रह शुरु किया तब गोखलेजी ने अुन की मदद मे अपनी सारी शक्ति लगायी। आखिर मे गोखले और जनरल स्मट्स के बीच कुछ समझौता हुआ। थोडे ही दिनो मे जनरल स्मट्स ने समझौते की कुछ शर्तें तोडी। जो बाते लिखी हुअी नही थी अुन के बारेमे चर्चा शुरू हुअी। अब सवाल अुठा कि किसके वचन पर विश्वास रखा जाय? जनरल स्मट्स के या गोखले के? तब कअी अग्रेजो ने कहा कि गोखले का हमे परिचय है। अुनके वचन पर अविश्वास नही हो सकता।

भारत को गोखलेजी की सब से बडी देन भारत सेवक समाज ही है। अिस सस्था के सदस्य जो प्रतिज्ञा लेते है अुसमेसे चन्द बाते यहाँ याद करने लायक है।

१ · स्वदेश को ही मै अपने विचारो मे प्रथम स्थान दूँगा और मुझ मे जो कुछ भी अच्छे-से-अच्छा हो, देश की सेवा मे अर्पण करूँगा।

२ देश सेवा द्वारा मै अपने किसी निजी स्वार्थ को सिद्ध करने की कोशिश नही करूँगा।

३ सब भारतवासिओ को मै अपने भाअी समझूँगा। बिना

किसी जाति और धर्म के भेद के सबो की अुन्नति के लिये कोशिश करता रहूँगा।

४ मै अपना व्यक्तिगत जीवन शुद्ध रखूँगा। किसी के साथ व्यक्तिगत झगडे मे न पडूँगा।

भारत सेवक समाज के सदस्य राजनैतिक काम के साथ सार्वजनिक शिक्षा का भी काम करते थे। सब तरह के लोगो के बीच प्रेम भाव और सहयोग बढाने की कोशिश करते थे। शिक्षा के क्षेत्र मे भी स्त्री शिक्षा, औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा और पिछडी हुअी जातियो की शिक्षा अिन को प्रधान पद दिया जाता था।

गोखलेजी पूरे पचास बरस भी नही जीये। लेकिन अितने थोडे समयमे अुन्होने भारत की राजनीति मे आध्यात्मिकता का सचार कराया। देशसेवा को अेक पवित्र दीक्षा बनाया। और अैसे दीक्षित जीवन के कारण धारण की हुअी गरीबी को तेजस्वी और सुगन्धित बनाया।

गोखले का समस्त जीवन सेवामय और पवित्र था ही। अुन से प्रेरणा पाकर गाधीजी ने अपनी सेवा की भावना मजबूत की और अेक लोकोत्तर आदर्श अिस जमाने के लिअे रूढ करके दिखाया।

अब सवाल यह उठता है कि देश के बडे बडे नेता और पवित्र पुरुष अपने पीछे अपनी परम्परा चलाने के लिअे जो सस्थाये बना देते है अुन मे अुन-अुन विभूतिओ की महत्ता सग्रहीत हो सकती है सही? स्वामी विवेकानद, स्वामी दयानद सरस्वती, स्वामी श्रद्धानदजी, गोखलेजी, गाधीजी, अरविंद घोष, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अॅनी बेसन्ट अित्यादि पुण्य पुरुषो ने अपनी-अपनी सस्थाये बनायी। अिन महापुरुषो से देश ने जो प्रेरणा पायी वही प्रेरणा क्या अुन की सस्था से लोगो को मिल सकती है? आर्य समाज, गुरुकुल, रामकृष्ण मिशन, सर्वेंट्स ऑफ

अिंडिया सोसायटी, सत्याग्रह-आश्रम, अरविंदाश्रम, शातिनिकेतन और विश्वभारती, अडीयार की थीओसॉफिकल सोसायटी आदि सस्थाओ ने देश की अच्छी सेवा की है। अिन सस्थाओ को चलाने के लिअे अच्छे सेवक भी मिले है। लेकिन क्या गोखलेजी के जोवन की भव्यता उनकी सरवन्टस् ऑफ अिंडिया सोसायटी मे प्रतिबिंबित हो सकी है? क्या गाधीजी का महात्म्य अुनके सत्याग्रह आश्रम मे प्रकट हो सका? रवीद्रनाथ ठाकुर की प्रतिभा अुनके शातिनिकेतन मे या विश्वभारती मे सगठित हुयी है? क्या दयानद सरस्वती का धर्मतेज आर्यसमाजीओ मे पाया जाता है? अरविद घोष ने जिस दिव्य जीवन का साक्षात्कार किया वह अुनके शिष्य कर सके है? अिन सब स्वाभाविक और अहम् सवालो का जवाब सतोषकारक नही मिलता। तो क्या हम यही समझे कि प्रतिभाशाली पुरुप अपनी सस्था द्वारा अपनी परपरा कायम किये बिना रह नही सकते और अैसी सस्थाये अपने सम्थापको का तेज झेल नही सकती?

रानडे की अपेक्षा गोखलेने अधिक कार्य करके दिखाया। गोखलेजी के कार्य को गाधीजी ने अेक नया और अुज्ज्वल रूप दिया। गोखलेजी ने रानडे के स्वदेशी आदोलन का समय-समयपर पुरस्कार किया और स्वदेशी मिलो को सरकारी अुत्तेजन मिले अैसी कोशिशे की। गाधीजी ने मिलवालो की स्वार्थपरायणता देखी, मिल-परायण सस्कृति की घातकता पहचान ली और खादी तथा ग्रामोद्योगो का मौलिक और व्यापक आदोलन चलाया। सरकार की मदद न मॉगते हुये जनता को जीवन परिवर्तन का मार्ग सुझाया। गोखलेजी ने प्राथमिक शिक्षा नि शुल्क, व्यापक और आवश्यक बनाने की कोशिश की। गाधीजी ने राष्ट्रीय शिक्षा को नया रूप देकर लोकभाषाओ की और राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा बढाअी। अनेक विद्यापीठो की स्थापना की और आखिरमे 'ग्रामोद्योग प्रधान अनुबन्धी शिक्षा पद्धति' का आविष्कार किया।

राष्ट्रीय महासभा और सरकार दोनोने अुसका स्वीकार किया। अहिंसक समाज मे विद्यार्थियो की श्रमदक्षिणा द्वारा शिक्षा का भार कम कर सकते है, यह भी अुन्होने देशको समझाया। गोखलेजी ने लड लडकर नमक का टेक्स कुछ समय के लिये कम करवाया। गांधीजी ने यह सिद्धात स्थापित किया कि हवा, पानी और नमक तीनो कुदरत की देन है। अुसपर टेक्स नही लगना चाहिये। अिस नमक का सवाल लेकर ही गाधीजी ने सरकार की सैतानियत का विरोध किया और अत मे स्वराज्य हासिल किया। डोमिनियन स्टेटसका ख्याल करनेवाले गोखलेजी के शिष्य गाधी ने भारतको पूर्ण स्वराज्य का सूर्योदय दिखाया। और सर्वोदय की ओर अुसे अग्रसर किया। यही है सद्-शिष्य प्राप्त करने का सद्‌भाग्य।

जिन लोगोने भारतका स्वातत्र्य युग ही देखा है, अुनको गोखलेजी के जीवनकाल का ख्याल नही आयेगा। देश कैसा दबा हुआ था, जनता कितनी सोयी हुअी थी, राष्ट्रसेवा का आदर्श लोगो को कैसा अपरिचित था, लोग रूढि, स्वार्थ और भेद-भावमे कैसे फँसे हुये थे अिसका ख्याल आज करना मुश्किल है। आज भी देशपर रूढि सवार है, लोग स्वार्थ-वश होकर अन्धे बनते है, भेद के तत्व तो पहले की अपेक्षा बढ ही गये है तो भी आज कुछ ऐसी हद जम गअी है जिस के नीचे कोअी जा नही सकता। अुन दिनो अैसा नही था। गोखलेजी जैसो ने सार्व-जनिक जीवन की और राष्ट्रसेवा के आदर्श की जो नीव डाली अुसी के आधार पर गाधीजी जैसे आगे बढे और देशको स्वराज्य प्राप्तितक ले गये।

दुनियामे जो अेक के पीछे अेक महायुद्ध चले अुसके कारण सारी दुनिया गिर-सी गयी है। और स्वराज्य प्राप्ति के बाद राष्ट्र-सेवा मे शिथिलता आ गअी है। लेकिन यह सब ढीलापन कुछ समय तक ही चलेगा। लोग अपना अुत्तरदायित्व समझ जायेगे, भारतके आगे जो

पवित्र मिशन आ पहुँचा है और जो अुज्जवल भविष्य दीख रहा है, वही भारतको फिरसे जाग्रत करेगा और विश्वसेवा के लिअे योग्य बनायेगा। गोखले जैसो का जीवन-चरित्र अिसमे जरूर मददगार होगा। अिसलिये श्रद्धा और भक्ति से अुनका हम स्मरण करे।

—※—

देशभक्त नामदार

स्वराज्य के बाद भारत की स्थिति बिल्कुल बदल गअी है। दुनिया के दरबार मे भारत को स्थान मिला है अितना ही नही, भारत अब धीरे-धीरे दुनिया की परिस्थिति पर अपना असर डालने लगा है। भारत की 'लोकसख्या' और भारत की 'गरीबी' अितने बडे पैमाने पर है कि सारी दुनिया के छोटे-बडे अनेक राष्ट्रो को भारत का विचार करना पडता है। दूसरी ओर भारत ही सारी दुनिया मे 'सबसे बडा प्रजातत्र' है और दुनिया भी अुसी रूप मे अुसे पहचानती है।

भारत की नीति की दो बाते दुनिया पर असाधारण प्रभाव डालने लगी है। अेक है हमारा सर्व-धर्म-समभाव और दूसरी बात है दुनिया की लश्करी राजनीति मे भारत की तटस्थता। दोनो ओर से अितना जबरदस्त दबाव होता रहा फिर भी भारत निष्ठापूर्वक अडिग रहा और किसी भी गुट मे शामिल नही हुआ। यह कोअी छोटी सिद्धि नही है। यह सब हो सका अिसका अेक ही कारण है—हम स्वतत्र हुअे, अपने भाग्य विधाता अब हम खुद ही है।

नामदार गोखले का जमाना अैसा नही था। हमारे भाग्यविधाता अगरेज थे। अुन का छोटे से छोटा गोरा अफसर भी हमारे सबसे श्रेष्ठ नेताओ को दबा सकता था और चार 'सयानी बाते' अुन्हे सुना सकता था, अैसे वे दिन थे। 'देश की जो हालत है अुस का स्वीकार कर के अुस मे से अपने राष्ट्र को जगाने के लिअे अपनी जान को निचो डालना' अैसा प्रण जिन्होने लिया अुन मे से अेक नामदार गोखले थे। अेक तरफ लोगो को तैयार करना और दूसरी ओर साम्राज्य सरकार के बनाये हुअे छोटे दरबार मे भारत का केस पेश करना अैसा दुतर्फा काम

गोखलेजी को करना पडता था। यह करते हुअे अपने चारित्र्य की, अपनी विद्वत्ता की, आर्थिक क्षेत्र मे अपनी जानकारी की और अनुनय-शील वक्तृत्व की छाप देश पर और अुस समय के राज्यकर्ताओ पर अच्छी तरह जमाकर अुन्होने देश की सेवा की। अिसलिअे कृतज्ञ भारत की ओर से अुन्हे हम श्रद्धाजलि दे रहे है।

अपनी बाल्यावस्था मे हम महाराष्ट्री लोग दो राजनैतिक नेताओ को विशेषरूप से जानते थे—बाल गगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले। सरकार-दरबार मे गोखलेजी का अच्छा प्रभाव था। लेजिस्लेटिव काअुन्सिल—विधान परिषद के वे मेम्बर थे अिसलिअे अुन्हे सब 'नामदार (honourable) गोखले' कहते थे। टीकाकार अुन्हे 'राजमान्य' कहते थे। गुजरात मे जैसे किसी भी आदमी के नाम के पीछे 'भाअी' शब्द आता है, बगाली मे बाबू और अग्रेजी मे (पहले) मिस्टर आता है, वैसे महाराष्ट्र मे किसी को भी खत लिखा जाय तो शुरूमे राजमान्य राजेश्री शब्द आयेगे ही। लेकिन गोखलेजी तो नरम दल के थे, अिसलिअे अुन के आलोचक अुन्हे 'राजमान्य' कहते थे। अुसपर से बालगगाधर तिलक के लिअे लोगो ने बिरुद बना लिया 'लोकमान्य'।

राजनैतिक क्षेत्र मे हम युवको को लोकमान्य का राजकारण पसन्द था। परन्तु दूसरो की तरह मै नामदार गोखलेजी के बारे मे कभी ओछा नही बोलता था। वे समर्थ शिक्षाशास्त्री है, गणिती और अर्थशास्त्री है, निर्मल और त्यागी है और विशेषकर ससार-समाज सुधार के बारे मे लोकमान्य जैसे नरमदल के नही है, सुधारक है। अिसलिअे गोखलेजी मुझे खास पसन्द आते।

जब गाधीजी ने मुझे अपने आश्रम मे आकर रहने का निमन्त्रण दिया तब कोअी गलतफहमी न रहे अिसलिअे मैने पहले से स्पष्टता

कर ली थी कि, "मै क्रान्तिकारी हूँ , परन्तु हिंसापर का मेरा विश्वास ढीला हो गया है । लेकिन अहिंसा अध्यात्म की दृष्टि से श्रेष्ठ है अैसा मानते हुअे भी अहिंसा स्वराज्य दिला सकेगी अैसा विश्वास मै अपने दिल मे अब तक पैदा नही कर सका हूँ।" और दूसरी बात मैने गाधीजी से कही कि, "आप नामदार गोखले को अपने राजनैतिक गुरु मानते है । मुझे लोकमान्य तिलक का राजकारण पसन्द है अिसलिअे गोखलेजी के बारे मे अुस प्रकार का आदर नही है ।" गाधीजी ने तुरन्त कहा, अुस मे कोअी हर्ज नही । मै जानता हूँ कि अमुक लोगो मे गोखले प्रिय नही है ।"

अितनी स्पष्टता करने के बाद मैने आगे कहा कि, "समाज-सुधार मे गोखलेजी के विचार पसद होने से अुतने भर के तिअे मे अुन्हे नेता मानता ही हूँ । तदुपरात अुनकी दो प्रवृत्तियो के कारण मेरे मन मे अुनके लिअे आदर है । नमक का कर अन्यायकारी है, वह दूर होना ही चाहिये अिस प्रकार का प्रखर आदोलन अुन्हो ने हर वर्ष लेजिस्ले-टिब काअुन्सिल मे चलाया है । यह कर वे दूर न करवा सके । फिर भी कम तो करवा ही सके है । यह है अेक वस्तु । दूसरी यह कि प्राथमिक शिक्षा मुफ्त, सार्वत्रिक और लाजमी करनी चाहिये अिस बारे मे अुन्हो ने जो आन्दोलन चलाया वह बताता है कि गोखलेजी मे गरीबो के प्रति कितनी गहरी और जीवित दर्दभरी भावना है । टिळक पक्ष के कुछ लोग जब भी मौका मिले गोखलेजी को गालियाँ देने मे कसर नही रखते । मै अुनमे से नही हूँ। गोखलेजी के मन मे प्रजाशक्ति के बारे मे काफी विश्वास नही है यही अेक शिकायत अुन के बारे मे मेरे मन मे है ।"

गाधीजी ने मेरी बात शान्ति से सुन ली और यह चर्चा आगे नही चली । परन्तु अिसी कारण मेरे मन मे बहुत मथन शुरू हो गया । गाधीजी जिन्हे अपने राजनीतिक गुरु मानते है और 'महात्मा' कहते

है अुन के बारे मे जल्दी मे ओछा अभिप्राय मुझे नही बनाना या रखना चाहिये, नयी दृष्टि से अुन की ओर देखना चाहिये, अिस प्रकार मै सोचने लगा।

और एक बात। न्यायमूर्ति रानडे के धर्म प्रवचन मुझे बहुत पसद आते थे। और सातारा के हेडमास्टर, विख्यात अर्थशास्त्री गणेश व्यकटेश जोशी के बारे मे मेरे मनमे बहुत आदर था। अुन दोनो के चेले के रूप मे भी मै गोखलेजी को पहचानता था। अिसलिअे भी गोखलेजी के बारे मे मेरा सद्भाव देखने-देखते बढ गया।

गोखलेजी के बारे मे सारी बाते गाधीजी के साथ शान्तिनिकेतन मे हुअी होगी। बाद मे कुछ ही दिनो मे गोखलेजी का देहान्त हुआ। अिसलिअे सार्वजनिक जीवन मे वे हमारे पूर्वज-से बने। अिस प्रकार भी अुन के बारे मे मेरा आदर बढा।

और अेक मुख्य बात तो कहने की रह गअी। हम जब कालेज मे पढते थे अुसी अरसे मे सन् १९०५ गोखलेजी ने 'सर्व्हेंट्स ऑफ अिन्डिया सोसायटी' की स्थापना की। गरीबी मे रहना, जो कुछ भी आजीविका मिले अुसी मे गुजारा करना और सारी जिदगी देश-सेवा के लिअे अर्पण करना अिस अुद्देश्य से लोकसेवको को अिकट्ठा करना, अुन्हे दीक्षा देना और राजनीतिक क्षेत्र के अलावा जनता की अनेक क्षेत्रो मे सेवा करना अिस के लिअे अुन्होने एक लोक-सेवक समाजकी स्थापना की। अुस जमाने मे वह अुन की सचमुच असाधारण वस्तु थी, और अिस कारण गोखलेजी के बारे मे मेरे मन मे सब तरह से आदर अुत्पन्न हुआ था।

जिस साल मेरा जन्म हुआ अुसी साल [सन् १८८५] काग्रेस का भी जनम हुआ। और बाद मे जिस कालेज मे मै पढा अुस कालेज की स्थापना भी १८८५ मे ही हुअी थी। गोखलेजी अिस के आजीवन

सदस्य बने थे। और गोखलेजी तथा अुन के साथियो ने जेस्युअिट लोगो की तरह गरीबी मे रहकर देशसेवा करने का सोचा था। परन्तु यह विचार अुस समय परिपक्व नही हुआ था। पूरी निष्ठा से बीस साल तक डेक्कन अेज्युकेशन सोसायटी की सेवा करने के बाद गोखलेजी उसमे से मुक्त हुअे और अुन्होने तुरन्त 'सर्वेण्ट्स ऑफ अिण्डिया सोसायटी' की स्थापना की। अुसी वर्ष यानी चालीस वर्षकी जवान अुम्रमे वे बनारसके काग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष हुअे।

हम छुटपनमे जो गणित सीखे वह गोखलेजी की किताब परसे ही। यो हम अुन्हे अेक शिक्षाशास्त्री के रूपमे जानते ही थे। फर्ग्युसन कालेजकी सेवा तो अुन्होने पन्द्रह साल तक की। फिर भी अुनका मुख्य काम तो राजनीतिक सार्वजनिक जीवन का ही था। काग्रेस का और लेजिस्लेटिव काअुन्सिल का काम अुन के जमाने मे अुन्होने जितना किया अुतना शायद ही किसी ने किया हो। विदेशी सरकार से दिन-रात काम करना है अिसलिअे अुन्होने अग्रेजी भाषा का ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त किया। अुनके बोलने के ढग पर सभी मुग्ध थे। हिन्दुस्तान के कमान्डर अिन चीफ लार्ड किचनर ने अेक बार कहा था कि नामदार गोखलेजी ने जो अग्रेजी किताब न पढी हो वह पढने जितने महत्त्व की न होगी। सचमुच अग्रेजी साहित्य को गोखलेजी पी गये थे। अुनके व्याख्यान सुनना जीवन का बडा आनददायी अवसर था। 'राजकाज चलाने मे कुशल और बडे पहुँचे हुअे बडे-बडे अगरेज अफसरो और राजनीतिक पुरुषो से टक्कर लेनेवाले गोखलेजी की तैयारी, वाक्कुशलता और दूसरे आदमी को जीतने की कुनेह यह सब देखकर लोग चकित हो जाते थे। हिन्दुस्तान का अर्थशास्त्र अुन्हे अितना मालूम था कि अगरेज सरकार अुनसे डरकर चलती। लार्ड कर्जन जैसे अहमन्य और मिजाजदार वाअिसराय को अगर किसी भारतीय नेता की अीर्ष्या होती थी तो वह गोखलेजी की। लार्ड कर्जन जब भारत छोडकर चले

गये [अुन्हे जाना पडा] तब सात्त्विक गोखलेजी के यही अुद्‌गार थे कि, "सज्जनो ! दुनिया मे भली बुरी तमाम बातो का अत होता ही है।" कर्जन आमदनी का भी अत हुआ वेल्बी कमिशन से लेकर पब्लिक सर्विस कमिशन तक गोखलेजी ने राजनीतिक क्षेत्र मे जो काम किया अुस से अुस जमाने मे जितनी शक्य थी, भारत की कीर्ति बढी। गोखलेजी ने यो ठेठ सन् १८९३ से गाधी जी को जो प्रोत्साहन दिया, दक्षिण आफ्रिका के हमारे देश वासियो की स्थिति सुधराने के लिअे गाधीजी की जो मदद की अुसके लिअे हमारी प्रजा गोखलेजी की सदैव कृतज्ञ रहेगी। गोखलेजी ने अुस आपत्कालीन समय हिंद मे से न सिर्फ पैसे अिकट्‌ठे करके दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी को भेजे, वे खुद भी दक्षिण अफ्रीका गये और वहाँ के सब से अूचे राजनीतिक पुरुषो से अुन्हो ने बिष्टी भी की। कविवर रवीन्द्रनाथ ने यहाँ से मिस्टर अेन्ड्रूज और पियरसन को भेजा। बहुत बातचीत [negotiations] और झगडे के अत मे गाधीजी तीन पौड का माथाकर रद्द करा सके और अमुक काले कानूनो को पास होने से रोक सके।

महाराष्ट्र मे कोल्हापुर के पास अेक गरीब किन्तु सस्कारी खान-दान मे जन्म लेकर अपनी हिम्मत से गोखलेजी ने अच्छी शिक्षा पाअी और अूची नौकरी और धनसम्पदा का लोभ छोडकर राष्ट्र की सेवा मे अपनी सारी बुद्धिशक्ति खर्च की और अपनी काया को निचो डाली, देश को ठक्कर बापा जैसे अनेक भारत सेवक तैयार कर दिये और अुम्र पचास तक पहुँचे अुस के पहले ही देह छोडी। बहुत ही श्रद्धा से गोखलेजी कहते थे कि, 'देश की परिस्थिति सुधारने की बहुत कोशिश करता हूँ परन्तु सफलता नही मिलती। सभव है, हमारे भाग्य मे असफलता के द्वारा ही देश की सेवा करना बदा हो। परन्तु हमारे बाद जरूर अैसे लोग आयेंगे जिन्हें पूरी सफलता प्राप्त होगी और भारत-भूमि अच्छे दिन देखेगी।' अुन की अिस अिच्छा को सफल होने के

लिअे भारत को लबे अरसे तक राह देखनी नही पडी। सन १९१५ के आरम्भ मे गोखलेजी अिहलोक छोड गये और तीस पैतीस वर्ष के अन्दर भारत देश ने स्वतन्त्रता के सूर्य के दर्शन किये।

अैसे अेक आर्यसुपुत्र, भारतरत्न, महात्मा गोखलेजी के जन्म को आज सौ साल पूरे होते है। अिसलिअे हम सारे भारतवर्ष की ओर से अुन्हे कृतज्ञतापूर्वक श्रद्धाजलि अर्पण करे। तपस्या तो की गोखले सरीखो ने और अुस का लाभ मिला हमको। अुनकी नि स्वार्थ परपरा चालू रखेगे तो सब अच्छा ही होगा। अुस अप्रतिम भारतसेवक का अुत्तम वही श्राद्ध होगा।

अुनका जमाना अब नही रहा। देशकी और दुनिया की परिस्थिति बदल गअी है। भारत द्वारा सारी दुनिया की सेवा करने का मौका हमे मिला है। परन्तु अैसी सेवा करने की निष्ठा और चारित्र्यसिद्धि तो हमे गोखले सरीखे पूर्वजो से ही विरासत मे पानी और बढानी होगी।

१५ मई, १९६६

लोकमान्य का जीवनकार्य

ओीस्वी सन् १८५७ के असफल प्रयत्न के बाद अग्रेजो की सत्ता अिस देश मे पूरी तरह जम गअी क्योकि अदरूनी फूटके कारण देश का बल छिन्न-भिन्न हो चुका था। अनुशासन और अेकता के अभाव मे देश हार गया। लेकिन 'भारतीय राष्ट्र और भारतीय सस्कृति अंग्रेजो के चगुलमे न फँसी है, न फँसनेवाली है। अिस बात का हिन्दुस्तानियो को और अग्रेजी सल्तनत को अखण्ड स्मरण और पूरा विश्वास दिलानेवाली जो चन्द हस्तियाँ अिस देश मे पैदा हुअी, अनमे से अेक थे विक्रमवीर लोकमान्य तिलक।

सन् सत्तावन मे, जब स्वतत्रताका महाप्रयत्न हुआ, बालगगाधर अेक वर्ष के बालक थे। जिस शिक्षा के बलपर अग्रेज यहाँ विजय प्राप्त कर सके, अुसी शिक्षा को हासिल करके अग्रेजो के साथ लडने का विचार रखनेवाले व्यक्तियो मे तिलक अग्रसर सिद्ध हुअे। सार्वजनिक जीवनमे अुनके साथी और गुरु श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर अग्रेजी साहित्य को 'शेरनी का दूध' कहते थे। अुस 'दूध' का पान करके तिलकने जन-हितके लिअे राज्यकर्त्ताओ के साथ लडने का निश्चय किया।

शुरूसे स्वदेश-सेवा के सपने देखनेवाले बालगगाधरके जीवनमे अिस ब्योरेका कोअी खास महत्त्व नही कि अुन्होने बीस सालकी अुम्रमे बी० अे० का अिम्तहान पास किया, और फिर अेल् अेल्० बी० की परीक्षा दी, वगैरा-वगैरा। सन् सत्तावनके अनुभव से यह तो निश्चित हो चुका था कि प्रजा-शरीर कमजोर हो चुका है। अुसे बल-शाली बनानेका, जन-जाग्रतिका, अेकमात्र अुपाय राष्ट्रीय शिक्षा है, अिसका निर्णय तिलकने बचपनमे ही चिपलूणकर, नामजोशी, आगरकर

आदि मित्रो के साथ कर लिया था। विष्णुशास्त्री स्वाभिमानकी मूर्ति थे। स्वधर्म, स्वदेश, और स्वभाषा के बारेमे अुनके मनमे आदर और अभिमान था। अिसीलिअे स्वाभिमान वश, सरकारी नौकरीका मार्ग छोडकर अुन्होने जन-शिक्षाके कार्यमे अपना जीवन समर्पित कर दिया। देशमे तेजस्वी शिक्षाका प्रसार हो, लोगोको निर्दोष साहित्य पढने को मिले, देशहितके प्रश्नोकी चर्चा हो, यही नही, बल्कि लोगोकी अभिरुचि धर्मको हानि पहुँचानेवाली न बन जाय, अिस अुद्देश्यसे श्री विष्णु-शास्त्री चिपलूणकरने 'न्यू अिंग्लश स्कूल' नाम का अेक स्कूल', 'नवीन किताबखाना' नामकी पुस्तकोकी अेक दुकान, 'निबन्धमाला' नामकी अेक तेजस्वी मासिक पत्रिका, और पौराणिक तथा हिन्दु-जीवनमे सम्बन्ध रखनेवाली -तसवीरें छापने के लिअे 'चित्रशाला' नामके अेक कलागृहकी स्थापना की। आगरकर अुनके समान ही देशाभिमानी थे, लेकिन अुनका झुकाव अग्रेजी साहित्यकी ओर विशेष होनेसे अुनमे समाज-सुधार की वृत्ति अधिक तीव्र थी। अिन लोगोने लोक-शिक्षाका कार्य शुरू किया। तिलक 'न्यू अिंग्लिश स्कूल' मे गणित पढाते थे, बादमे अिस मित्र-मडल ने अेक कॉलेजकी स्थापना की। पहले अुसका नाम 'महा-राष्ट्र कालेज' रखनेका अिरादा था, लेकिन फिर अुसे 'फर्ग्युसन कालेज' का नाम दिया गया। अिसके साथ ही तिलक अेक लॉ क्लास भी चलाते थे। देशभक्तोका यह युवक-मडल सभी प्रश्नोकी चर्चा किया करता था। लेकिन तिलककी अपनी वृत्ति यह थी कि राष्ट्रीय शिक्षाका काम हाथमे लेनेके बाद, जहॉतक हो सके, दूसरे कामोमे नही पडना चाहिये। विद्यार्थी-जीवनमे अुनकी अेकाग्र अध्ययनशीलता और अध्यापन के प्रति अुनकी रुचि व कलाको देखते हुअे यह वृत्ति अुनके लिअे स्वाभाविक थी। यही कारण था कि डेक्कन अेज्युकेशन सोसायटी को 'जेस्युअिट' सस्थाके ढगपर चलाने, और अुसमे काम करनेवाले व्यक्तियो द्वारा अपना सर्वस्व सस्थाको समर्पित करनेके आदर्शके वे आग्रही थे। आगरकरजी अिस विचारसे सहमत न हो सके। मतभेद

बढता गया, और तिलकने फर्ग्युसन कॉलिज छोड दिया। जन्मसिद्ध अध्यापकके जीवनमे परिवर्तन हुआ, और अेक पत्रकार की हैसियतसे जन-शिक्षाका व्यापक कार्य हाथमे लेकर वे लोकमान्य बने।

तिलकने मराठीमे 'केसरी' नामका पत्र निकालना शुरू किया, और वे अग्रेजीमे 'मराठा' भी चलाने लगे। जब 'केसरी' के साथ मतभेद अुत्पन्न हुआ, तो आगरकरने 'सुधारक' पत्र शुरू किया। अिन दो पत्रोने समाज-सुधारके बारेमे और हिन्दू-समाज-व्यवस्थामे, सरकारी हस्तक्षेपकी मर्यादा के बारेमे, कअी वर्षो तक चर्चा करके महाराष्ट्रको भली या बुरी, किन्तु बडी-से-बडी शिक्षा प्रदान की। 'केसरी' मे फूट पडनेसे पहले ही अिस युवक-मडलपर अेक भारी आफत आ पडी।

जब शिवाजी महाराजके अेक वशज, कोल्हापुरके महाराजको, पागल ठहराकर मद्रास भेजा गया, तो अिन देशाभिमानी नवयुवकोका पुण्यप्रकोप भडक अुठा। अुन्होने अिस घटनाकी गहराअीमे अुतरकर 'केसरी' मे लेख लिखे, जिसके परिणाम स्वरूप 'केसरी' पर मुकदमा चलाया गया। अिस मुकदमेके दरमियान विष्णुशास्त्री बत्तीस सालकी छोटी अुम्रमे चल बसे, और आगरकर तथा तिलकको अेकसौ अेक दिनकी सरकारकी मेहमानगीरी स्वीकार करनी पडी। जनमत तैयार करके सरकारतक अुसकी आवाज पहुँचानेके अिरादेसे महामति रानडे जैसे व्यक्तियोने पूनामे 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना की थी। 'सार्वजनिक सभा' कांग्रेसकी जननी समझी जाती है। अिस सभामे भी अिस प्रश्नपर मतभेद पैदा हुआ कि सरकारके साथ किस हद्तक सहयोग किया जाय, और जिन्हे तिलकके विचार पसन्द न थे, अुन्होने 'डेक्कन सभा' की नीव डाली। अिस तरह पूनावालोमे परस्पर तीव्र मतभेद रहने लगा, और अुसके कारण पूनाका राजनीतिक वायुमडल गरम रहने लगा। आज भी राजनीतिक चर्चामे, और अग्रेजोकी नीतिके प्रति सजग रहनेमे सारे देशमे पूना शहर सबसे आगे गिना जाता है।

जेलसे छूटकर आनेके बाद तिलकने अपना सारा ध्यान 'केसरी' पर केन्द्रित किया। मराठी भाषाको गढकर अुसे समृद्ध बनानेके, वर्त्तमान समयके सभी विचारो और राजनीतिक सिद्धान्तोको मराठी भाषा द्वारा जनसमुदायको समझानेके, जनताके भावोकी सभी छटाओको अुसमे व्यक्त करने और भाषामे राष्ट्रीय जाग्रतिके प्राण अुत्पन्न करनेके विविध अुद्देश्यको सामने रखकर अुन्होने प्रति-सप्ताह लिखना शुरू किया। अगर कोअी कहे कि 'केसरी' ने राजनीतिक महाराष्ट्रका निर्माण किया, तो वह अयथार्थ न होगा। लोकमान्यके 'केसरी' की भाषा आडंबर-रहित, सीधी किन्तु प्रौढ होती थी। अुसमे प्रकाशित होनेवाला साहित्य हर विषयपर पूर्ण अधिकार बतानेवाला, दलीलोसे युक्त और जोशीला होता था। जब 'केसरी' किसी प्रतिपक्षीके खिलाफ मैदानमे अुतरता, तो अुसकी भाषाका आवेश कमालतक पहुँच जाता। जोशके साथ कटुता या जहर न रहता हो, सो बात नही, लेकिन अुसमे भी गभीरताका पालन बहुत हदतक किया जाता था। प्रतिपक्षीको हरानेके लिअे 'केसरी' जिस जहरका प्रयोग करता था, वह बहुतसे लोगोकी सौम्य अभिरुचिको असह-नीय-सा लगता था, और अिसलिअे बहुतोने अिस आशयकी आलोचना भी की थी कि तिलककी भाषामे विनय नही होती, आदर नही होता। अिस आक्षेपका जवाब तिलक अिस तरह दिया करते—"लडवैया आदमी अिससे भिन्न कुछ कर ही नही सकता। अगर मुझे निवृत्तिमे ही समय बिताना होता, तो मै भी सब तरहकी अुदारता अवश्य दिखलाता, लेकिन जिसे काम करना है, अुसे तो मौका पडने पर प्रखर होना ही चाहिये।" देशी वृत्तपत्रोमे 'केसरी' के समान व्यवस्थित, प्रतिष्ठित और लोकप्रिय वृत्तपत्र अुस समयके हिन्दुस्तानमे शायद ही दूसरा हो। महाराष्ट्र का सार्वजनिक जीवन हिन्दुस्तान की जाग्रति, अेशियाकी भवितव्यता, यूरोप-की राजनीति, और दुनियाकी प्रगतिके बारेमे 'केसरी' मे हमेशा विद्वत्ता और जानकारीसे भरे हुअे प्रौढ लेख छपा करते थे। 'केसरी' अत्यत नियमित पत्र था। अुसका सब विधान और प्रबन्ध स्वय तिलकने ही

किया था । कहा जाता है कि दुनियामे जहाँ-जहाँ मराठी भाषा बोली या पढी जाती थी, वहाँ-वहाँ 'केसरी' पहुँच जाता था ।

लेकिन अेक 'केसरी' ही तिलक महाराजका कार्यक्षेत्र न था । अुन्हे अेक तरफ सरकारके खिलाफ और दूसरी तरफ समाज-सुधारकोके खिलाफ लडना पडता था । वास्तवमे तिलक पुराणप्रिय (दकियानूसी) नही थे, कअी सामाजिक सुधार अुन्हे बहुत जरूरी मालूम होते थे । फिर भी अुन्होने बहुतसे सुधारोका विरोध किया, जिससे गलतफहमियाँ पैदा हुअी । लोग अुन्हे कुधारक (सुधारोके दुश्मन) मानने लगे । तिलककी धारणा यह थी कि "समाज-सुधारोका काम तो हमेशाका काम है, अिसलिअे वह आहिस्ता-आहिस्ता होना चाहिये, खासकर, जब विदेशी राज्यके नीचे दबकर जनता आत्मविश्वास खो बैठी हो, और जब विधर्मी पादरियो द्वारा रात-दिन हमारी सस्कृतिपर प्रहार हो रहे हो, तब समाजको स्वाभिमानशून्य ओर हतोत्साह बनाना बडी गलती है । फिर, अगर हम समाज-सुधारोके पीछे पड गये, तो शिक्षित और अशिक्षितके बीच अेक खाअी-सी पैदा हो जायगी, अुनमे फूट पडेगी और राजनीतिक मामलोमे हम अधिक कमजोर बन जायँगे । अिसलिअे समाजपर हमला करके नही, बल्कि धीरे-धीरे समाजको अपने वशमे लाकर ही यथासभव सुधार किये जायँ । जब सरकारी शक्तिसे चौंधियाकर हम अुसके सामने नरम बन जाते है, तो फिर श्रद्धा और आदरके साथ समाजके सामने भी हम नम्र क्यो न बने ?" अपने अैसे विचारोके कारण, जहाँतक बन पाता, वे 'केसरी' मे समाज-सुधारके सवाल अुठाते ही न थे । अितनेमे 'सम्मति वयका बिल'—age of consent bill—पेश हुआ । यह नही कि तिलकको अिस बिलका तत्त्व मान्य न हो, फिर भी अुन्होने अुसका घोर विरोध किया । अुनका कहना था कि "अग्रेज लोग पराये है, वे जान-बूझकर हमारी सामाजिक बातोमे दखल नही देते, अिस तरह अुनकी अुदासीनताके कारण ही क्यो न हो, धार्मिक और

सामाजिक विषयोमे हमे जो स्वराज्य है, अुसे हम अपने ही हाथो क्यो खोवे ? अगर हम खुद ही सरकारको अपने घरके अन्दर प्रवेश करने देगे, तो हमारा स्वाभिमान और स्वातन्त्र्य कम हो जायगा और हम अधिक दुर्बल व पराधीन वन जायँगे ।" तिलक सभी पुराने रिवाजोका पालन नही करते थे । पक्ति-भेदके बारेमे आज जिस स्वतत्रताका अुपयोग किया जाता है, वे भी अुसका वैसा ही अुपयोग करते थे । अुनका जीवन अत्यन्त सादा और निष्पाप था, और फिर भी अुसमे धार्मिकताका आडबर बिलकुल न था । समाज और धर्मके अधिकारको स्वीकार करनेके विचारसे अुन्होने विलायतसे लौटने पर प्रायश्चित भी किया था, हालाँ-कि विलायतमे अुन्होने खाने-पीनेमे सपूर्ण शुद्धिका पालन किया था । अुन्होने राजनीतिक जलसोमे मुसलमानो और औसाअियोके साथ बैठकर भोजन किया था । अुन्होने यह घोषित कर दिया था कि शास्त्रोमे कही यह आज्ञा नही मिलती कि अत्यजोको अस्पृश्य समझा जाय । गगाधर राव जैसे अुनके कअी घनिष्ट मित्र सामाजिक सुधारोमे अगुआ थे ।

सन् १८९६ मे बम्बअीमे ताअून (प्लेग) का प्रकोप हुआ, और पूनामे भी अुसने पवेश किया । यह अेक अनपेक्षित और बिल्कुल नयी आपत्ति थी । सब लोग अिससे घबडा अुठे । सरकारको भी यह न सूझा कि प्लेगकी रोक के लिअे क्या अिलाज किये जायँ, अिसलिअे 'सेग्रीगेशन' और 'क्वारेण्टअिन' (अलहृदा रखना) जैसे कठोर अुपाय बरते गये, और ठीक-ठीक अमल करवानेके लिअे भावना' और सभ्यतासे रहित गोरे सिपाहियोकी नियुक्ति की गयी । प्लेगकी तकलीफकी बनिस्बत अिन सोल्जरोकी तलाशीका आतक लोगोके लिअे अधिक असह्य हो अुठा, और सर्वत्र हाहाकार मच गया । जिसे जिधर रास्ता मिला वह अुधर भाग निकला । लेकिन तिलकने अैसे वक्त पूना नही छोडा । वे शहरमे रहकर अेक ओर लोगोकी मदद करने लगे, और दूसरी ओर अुपायके बदले अपाय करनेवाली विवेकशून्य सरकारी सख्तीके कारण अुत्पन्न होनेवाले

जन-क्षोभको 'केसरी' द्वारा व्यक्त करने लगे। तिलकने तो क्षोभ व्यक्तभर किया था, मगर सरकारको लगा कि अुन्होने अुसे पैदा किया है। अिस लोक-क्षोभकी परिणति प्लेग-अफसर रैण्ड साहबकी हत्यामे हुअी। सरकारने अपनी प्लेग-नीतिमे परिवर्तन तो जरूर किया, लेकिन अुग्र स्वरूप धारण करके लोगोको दबानेमे भी कोअी कसर न रखी। पूनाके सरदार नातुबन्धुओको सरकारने नजरबन्द किया, और 'केसरी' पर राजद्रोहका मुकदमा दायर किया। कुछ मित्रोने तिलकको माफी मॉगनेकी सलाह दी, लेकिन अुन्होने कहा—"जो काम मैने सच्ची नीयतसे किया है, अुसके लिअे मै माफी क्यो मॉगूॅ? जिस तरह मल्लाहका काम करनेवाला किसी दिन समुद्रमे डूब भी सकता है, अुसी तरह देशसेवा करनेवालेके लिअे जेल-यात्राकी नौबत भी आ सकती है। ये तो हमारे व्यवसायके खतरे है। माफी मॉगकर मै देशकी कुछ भी सेवा न कर सकूॅगा। दूसरे, यदि अुसके कारण मेरा सत्त्व नष्ट हो गया, तो फिर मुझमे रह क्या जायगा?" सरकार ने अुन्हे डेढ सालकी सजा दी, यही नही, बल्कि असल कानूनमे भी तब्दीली करके राजद्रोहवाली धाराको अधिक कडा बना दिया। कहा जाता है कि जब तिलक जेल गये, तो पहले ही दिन अुन्हे अितना सख्त काम दिया गया कि चक्की पीसते-पीसते वे बेहोश हो गये। लेकिन होशमे आते ही वे फिर काममे जुट गये। अुन्होने छुट्टी नही मॉगी। छुट्टी मॉगना अुन्हे बहुत अपमानजनक मालूम होता था। जब अेक सालके बाद वे जेलसे छूटे, तो अुनके शरीरका वजन बहुत ही घट गया था, किन्तु जनतामे अुनका वजन अुतना ही बढ गया था। वापस आनेपर अुन्होने फिर 'केसरी' को हाथमे लिया, और 'पुनश्च हरि ॐ' कहकर लिखने लगे।

तिलकके कारावासके दिनोमे पश्चिमके सस्कृत-पडित मैक्समुल्लरके हाथमे अुनकी लिखी 'ओरायन्' अथवा 'मृगशिरम्' नामकी किताब पडी। 'ओरायन्' मे ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टि से वैदिक कालनिर्णयकी चर्चा थी।

अिस किताबको देखकर मैक्समुल्लर दग रह गये, मुग्ध हुअ, और अुन्हे लगा कि अिस तरहकी अगाध विद्वत्ताके पास ऋग्वेदका अपना अनुवाद सम्मतिके लिअे भेजना चाहिये। लेकिन अुन्हे पता चला कि ग्रन्थकर्त्ता तो जेलमे है। अिसलिअे अुन्होने सरकारकी मारफत पहले यह प्रबन्ध करवाया कि तिलकको जेलमे किताबे दी जायँ, पढनेके लिअे समय दिया जाय और बत्ती दी जाय। फिर अुनकी मध्यस्थताके कारण सरकारको नियत अवधिसे छह महीने पहले तिलकको छोड देना पडा। जेलमे वेदोका निरीक्षण करते हुअे अुन्हे सूझा कि आर्योका मूल निवासस्थान अुत्तर ध्रुवकी ओर होना चाहिये। अुनका यह खयाल हुआ कि वेदोमे अिस आशयका अुल्लेख मिलता है कि आर्य लोग सुमेरुके आसपास रहते थे। जेलसे छूटनेके बाद, जब ताअी महाराजके मुकदमे-जैसा सिर खाने-वाला मुकदमा चल रहा था, अुसी अरसेमे 'आर्कटिक होम अिन दि वेदाज' यानी 'वेदकालमे आर्योका सुमेरुकी ओरका निवासस्थान' नामका विद्वत्ता और शोध-खोजसे भरा हुआ ग्रथ अुन्होने प्रकाशित किया। अिस ग्रथके कारण अुनकी कीर्ति यूरोपके विद्वानोकी मडलीमे फैल गयी। 'आर्कटिक् होम' ग्रथ लिखने समय अुन्होने पारसियोके धर्मग्रन्थोका भी अध्ययन किया। फिर अीरान, मेसोपोटेमिया, खाल्डिया, सीरिया, असीरिया आदि देशोके प्राचीन अितिहास और अुनकी सस्कृतिकी ओर अुनका ध्यान गया। और, अुन्होने अपने कअी विद्वन्मान्य निबन्धोमे यह दिखा दिया कि वैदिक सस्कृतिके साथ अिनका कितना साम्य है। कअी लोग अुनकी विद्वत्ता देखकर अुनसे अनुरोध करते थे—"आप अिन राजनीतिक झमेलोको छोड दीजिये, और अपनी विद्वत्तासे दुनियाकी जो बडी से बडी सेवा आप कर सकते है, कीजिये।" अिसके अुत्तरमे वे कहते—"मुझे अिस तरह स्वच्छन्द (मनमानी) नही करना है। देशके लिअे लडना ही मेरा कर्त्तव्य है। विद्वत्ताका काम करनेवाले पडित तो हिन्दुस्तानमे कअी पैदा होगे, आर्यबुद्धि वध्या नही हुअी है।"

अुनके अेक मित्रने अुनसे पूछा—"स्वराज्य मिलनेपर आप किस

विभागके मत्री बनेगे ?" अुन्होने कहा—"मुझे राजनीतिमे कोअी दिल-चस्पी नही। स्वराज्य मिलनेपर मै तो गणितका अध्यापक बन जाअूँगा, और निश्चिन्तताके साथ विद्यानदका सुख लूटता रहूँगा।"

जबतक अपने देश-बन्धुओको भरपेट खानेको नही मिलता, तबतक विद्यानन्द-जैसा सात्विक आनन्द भी अुन्हे हराम मालूम होता था। वे हमेशा कहते—"स्वराज्यका आन्दोलन तो रोटीका आन्दोलन है।" अिसलिअे जब सरकारने खेतीके लगानके कानूनमे परिवर्तन करके अना-दिकालसे चलते आये जमीनके बशपरम्परागत स्वामित्वका अधिकार भूमिके बालकोसे छीन लिया, सात समुद्र पारसे आयी हुअी सरकारको हिन्दुस्तानकी भूमिका स्वामी करार करदे दिया, और हिन्दुस्तानी किसानको सिर्फ अपना भाडेका नौकर बना दिया, तो तिलकने सरकारको भूमिकर न देनेका आन्दोलन चलानेका विचार किया था, लेकिन अुस वक्त जनता अुतनी तैयार नही थी।

अिसी अरसेमे बम्बअी और पूनामे हिन्दू-मुसलमानोमे किसी कारणसे झगडा हुआ, और बहुत मार-पीट हुअी। पूनाके हिन्दू वरसोसे मुहर्रममे शरीक होते थे। अब अुन्होने शरीक होना बन्द कर दिया। तिलकने स्वीकार किया था कि अिस दगेमे दोनोकी गलती थी, मगर अुन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ज्यादा कसूर मुसलमानोका ही था। अिसलिअे कुछ मुसलमानोके दिलमे यह वहम पैदा हुआ कि तिलक मुस्लिम जमातके खिलाफ है। लेकिन चूँकि वह गलत था, अिसलिअे कुछ समयके बाद निकल भी गया। खिलाफत डेप्युटेशनवाले सैयद हुसैन साहबने जाहिरा तौरपर यह बात स्वीकार की कि 'हमारी यह धारणा गलत थी कि तिलक मुसलमानोके खिलाफ है।' क्योकि लखनअूकी काग्रेसमे हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच कोअी विरोध और सशय न रखनेके लिअे जो अधिकार-विभाजन किया गया था, अुसमे मुसलमान जो कुछ माँगते थे वह सब अुन्हे दे देनेकी सलाह स्वय तिलकने दूसरे नेताओको दी थी।

अुस समयका अुनका अेक मशहूर वाक्य यह है—"पहले देशका विचार होना चाहिये । मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान, यह भेद देशके हितका विचार करते समय मनमे नही आना चाहिये ।" यह देखकर कि पूनाके हिन्दू-मुसलमानोमे जो मनमुटाव पैदा हुआ, वह धर्मकी सकुचित कल्पना रखनेके कारण हुआ था, और अिस खयालसे कि हिन्दुओको भी मुहर्रमके बदले अुत्सव मनानेका कोअी साधन मिल जाय, अुन्होने गणेश-अुत्सव शुरू किया । गणेश-अुत्सवमे स्वयसेवको के और दूसरे युवकोके दल भजन गाते थे, विद्वान् नेता धार्मिक, सामाजिक और कभी-कभी राजनीतिक विषयकी चर्चा करते थे । अिस तरह लोगोको समयानुकूल शिक्षा मिलती थे ।

जिस तरह गणेश-अुत्सवसे धार्मिक जाग्रनि हुअी, अुसी तरह गणेश-अुत्सवसे पहले ही देशाभिमान और स्वाभिमानको जाग्रत करनेके लिअे तिलकने जो शिवाजी-अुत्सव शुरू किया था, अुससे भी बहुत कुछ जन-जाग्रति हुअी । अिन दानो आन्दोलनोके कारण महाराप्ट्रमे स्वदेशीका प्रचार बहुत हुआ, और शिक्षित तथा अशिक्षितके बीचका भेद कम होता गया । शिवाजी-अुत्सवके कारण ही पुराने अितिहासकी जॉच-पडताल करनेकी वृत्ति बढी, और कुछ चुनेहुअे विद्वानोका 'भारत-अितिहास-सशोधक-मण्डल' बना ।

सन् १९०४ मे युनिवर्सिटी अेक्ट पास हुआ, और सरकारने शिक्षा-विभागको—अुच्च शिक्षाको भी—अपने अकुशके नीचे और भी दबा दिया । सन् १९०५मे बग-भग हुआ । बगालियोने अर्जियो, सभाओ आदिके रूपमे जो कुछ किया जा सकता था, सब किया, और अन्तमे स्वदेशी तथा बहिष्कारका महाराष्ट्रीय आन्दोलन शुरू किया । स्वाभा-विकरूपसे बगाली लोगोको पहली सहानुभूति महाराष्ट्रकी तरफसे मिली । सरकार तो यही समझती है कि अत्याचार का अुपदेश भी बगालको पूनाकी ओरसे मिला । यह राष्ट्रीय मूलमत्र सब जगह फैल गया कि

स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा, अिन तीन अुपायोसे हमे स्वराज्य हासिल करना है। तिलकने अिसे 'स्वराज्यकी चतु सूत्री' कहा है।

बगालके राष्ट्रीय नेता स्वराज्यका अर्थ 'पूर्णस्वाधीनता' और बहिस्कारका अर्थ 'अग्रेजी राष्ट्रके साथ सपूर्ण असहयोग' करते थे। अिसपर बहुतसे नरम नेताओको यह लगा कि काग्रेस-प्रवेश के लिअे अेक बन्धन (creed) रखना चाहिये। तिलकका खयाल था कि अैसा बन्धन अेक तरह सब लोग स्वेच्छासे मानते ही आये है, अिसलिअे सौगन्धके साथ हस्ताक्षर करके अुसे स्वीकार करनेमे अेक प्रकारकी मानहानि होगी, और देशके सभी पक्षोको काग्रेसमे आने देनेसे असुविधा होगी। अिसलिअे अुन्होने अुसे पसन्द न किया। सूरतमे कॉग्रेसके अन्दर फूट पड गयी।

बग-भगके कारण स्वालबनका मार्ग अख्तियार करनेवाली जनतापरसे अेक तरफ काग्रेसका अकुश दूर हुआ, और अुसी वक्त दूसरी तरफ सरकारने दडनीतिका अवलम्बन किया। अिसके फलस्वरूप बगालमे यूरोपके आसुरी हथियारका, अर्थात् बमका जन्म हुआ। 'देशका दुर्दैव' शीर्षक अपने अेक अग्रलेखमे तिलकने अिसके लिअे सरकारी दुष्ट नीतिको ही जिम्मेदार करार दिया। महाराष्ट्रमे बगालके प्रति सम्पूर्ण सहानुभूति थी, लेकिन तिलकजी की दूरन्देश नीतिके कारण अत्याचारकी प्रवृत्तिपर रोक लगी हुअी थी। अिसी अरसेमे स्वदेशी और बहिष्कारके आन्दोलनके साथ-साथ मद्य-निषेधके आन्दोलनको जोर देकर अुन्होने जनताके जीवनको विशुद्ध बनानेका प्रयत्न किया। सरकारको यह भी अच्छा न लगा। शराबकी दुकानोके सामने खडे होकर लोगोको समझानेवाले समाज-सेवकोको सरकारने दबा दिया। तिलक ने बबअीके मिल-मजदूरोमे भी शराब-बन्दीका आन्दोलन चलाया, जिससे बहुत ही जन-जाग्रति हुअी। लोकमान्य मिल-मजदूरोसे कहते—"आप लोग अज्ञान और व्यसनोमे किस लिअे सड रहे है ? अगर आप अपने जीवनमे सुधार कर लेगे, तो

समझिये कि बम्बअी आपकी ही होगी, क्योंकि यहाँ आपकी तादाद तीन लाख है। आप अपने जीवनमे सुधार कीजिये, अपने बीच अेकता स्थापित कीजिये और वर्त्तमान स्थितिको समझ लीजिये।" यह शुद्ध सात्विक आन्दोलन भी सरकारको भारी पड गया। तिलकके कारण महाराष्ट्रमे अत्याचार या आतकवादके आगमनमे बाधा पडी थी, लेकिन सरकारने अिसे भी अुलटा ही महसूस किया। देशके और सरकारके दुर्भाग्यसे तिलकके 'देशका दुर्दैव' नामक लेखमे सरकारको राजद्रोह दिखाअी दिया। "जिस देशसे प्रेम करनेका आप दावाकरते हैं, अुस देशसे आपको छह सालके लिअे बाहर रखनेमे ही देशका भला है," यह कहकर हाअीकोर्टने तिलकको देशनिकालेकी सजा दी। "व्यक्तियो और राष्ट्रो का भाग्य अिस न्याय-मन्दिर की अपेक्षा अधिक अुच्च शक्तियो के हाथ मे रहता है, और शायद जगन्नियन्ता की यह अिच्छा है कि जिस सिद्धात के लिअे मै लड रहा हूं, अुसका अुत्कर्ष मेरे मुक्त रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट सहन से ही हो।" अिन शब्दोके साथ अुस महान्माने अुसे दी गअी सजा स्वीकार की। लोकमान्य की अिस तपश्चर्या से स्वराज्य का मत्र प्रत्येक भारतवासी के हृदय मे प्रस्फुरित होने लगा। छह सालकी अिस तपश्चर्या का दूसरा फल 'गीता-रहस्य' जैसे साहित्य-रत्न के रूप मे प्रकट हुआ।

तिलक को सजा देकर सरकार जो परिणाम पैदा करना चाहती थी, असमे अुलटा ही परिणाम हुआ। तिलककी प्रेरणा और अकुशके दूर होते ही महाराष्ट्र के युवक निरकुश बन गये, और जो अत्याचार तिलकके बाहर रहने से रुका हुआ था, और तिलक को सजा करके जिसे सरकार रोकना चाहती थी, वही अत्याचार महाराष्ट्र मे फूट निकला। नाशिक मे षड्यत्र हुआ। कलेक्टर जैक्सन की हत्या हुअी, और अनर्थ-परपरा का प्रवाह बहने लगा।

करीब-करीब पूरे छह साल बाद अुम्र के लिहाज से बूढे, क्षीणकाय, सदेश किन्तु अुत्साह मे नवयुवक लोकमान्य कर्मयोगका सन्देश लेकर वापस

आये यह सन्देश हिन्दुस्तान की लगभग सभी भाषाओं मे फैल गया। कर्मयोग के आचार्य ने 'स्वराज्य-सघ' की स्थापना की, और देश मे स्वराज्य का आन्दोलन जोरो से शुरू हुआ।

राष्ट्र-मद से अन्धे बने यूरोपियन राष्ट्रो मे युद्ध शुरू हुआ, और साम्राज्य-सरकार को डर लगा कि अैन मौके पर हिन्दुस्तान वफादार रहेगा या नही। अुस वक्त तिलक ने यह घोषणा करके कि अिस समय ब्रिटिश-साम्राज्यके साथ रहने मे हिन्दुस्तान का हित है,' ब्रिटिश-साम्राज्य की बहुत भारी सेवा की। अितनेपर भी शक्की सरकार को तिलक के भाषण मे राजद्रोह ही दिखाअी दिया। अेक वार फिर सरकार ने तिलक पर नोटिस तामिल की, लेकिन अिस बार हाओकोर्ट को तिलक के निर्दोप होने मे विश्वास हुआ, और वे वरी कर दिये गये।

अिसके बाद का अितिहास बिलकुल ताजा है। फौज के लिअे रगरूट भरती करने के अुनके प्रयत्न, पजाब और दिल्ली की तरफ न जाने की अुनपर लगायी गअी पाबन्दी, माण्टेग्यूसे मुलाकात, विलायत जाने की मुमानियत—लेकिन बाद मे मिली अिजाजत —विलायत मे किया हुआ काम, आदि बातें तो अभी पिछले साल जितनी ताजा है। तिलक की सारी जिदगी लडने मे ही बीती। जैसा कि अेक पत्रकार ने कहा है—'मृत्यु ने ही पहली बार अुन्हे शान्ति प्रदान की,। अुनका निजी जीवन सादा और शुद्ध था। अुनकी राजनीतिक प्रकृति जोशीली और लडाकू थी। लडाअी के मैदान मे अुतरने के बाद वे किसी से दया की याचना न करते थे, न स्वय किसी पर दया करते थे। फिर भी अुनके मनमे द्वेष नही टिकता था। अुन्होने आगरकरजी का कस कर विरोध किया, लेकिन अुनके अन्त समय मे अुनकी सेवा करने के लिअे वे स्वय अुपस्थित रहे। वे प्रहार तो अपने विद्या-गुरु भाण्डारकर जी पर भी करते थे, लेकिन साथ ही अुनकी कद्र करके अुनके प्रति शिष्यभाव का पालन भी करते थे गोखलेजी के साथ अुनकी कभी न बनी, लेकिन सन् १९०४-५ मे गोखलेजी ने विलायत मे हिन्दुस्तान की जो सेवा की, अुसकी कद्र करने के लिअे पूना शहर की तरफ से अुनका सार्वजनिक अभिनन्दन करने मे स्वयं

तिलक ही अग्रसर थे। आज यह देखने का अवसर नही कि तिलक के राजनीतिक मत क्या थे। भारतीय जगत अुनके मतो से भलीभाँति परिचित है। अगर कोअी अुन्हे न जानता हो, तो वह तिलकका दोष नही। अपने मतका प्रचार करने की तिलक की शक्ति और कला सचमुच अलौकिक थी।

दुनियाको अुनकी विद्वत्ताका साक्षात्कार हुआ। लेकिन भारतीय जनता के मोक्षके लिए अुन्होने अपनी वह सारी विद्वत्ता जन्मभूमि के चरणो मे समर्पित कर दी थी। 'स्वराज्य' अुनके जीवन का आधार स्तभ था। वे बुद्धिसे ब्राह्मण और वृत्तिसे क्षत्रिय थे। वे भारतीय जाग्रतिके जनक, आधुनिक महाराष्ट्र के पचप्राण, राष्ट्रीय पक्ष के अध्वर्यु, स्वराज्य मत्र के ऋषि, नौकरशाही के शत्रु और हिन्द-देवी के अनन्य अुपासक थे। जब हम हिन्दुस्तानी लोग अुनके जीवनसे स्वदेशसेवा की दीक्षा लेकर स्वराज्य के अधिकारी बनेंगे, तभी अुनकी पराक्रमी आत्मा को शाति मिलेगी। और तभी अुनका जीवन सफल होगा। स्वप्रयत्न से मनुष्य जितना जीवन साफल्य प्राप्त कर सकता है, अुतना अुन्होने पूर्णरूप से प्राप्त कर लिया था।

८-८-१९२०

— ० —

चारित्र्य का अनुवर्तन

अगस्त की पहली तारीख राष्ट्रीय श्राद्ध का दिन है। आज श्रद्धास्पद व्यक्ति के चारित्र्य के अनुवर्तन का सकल्प दोहराना है। श्राद्ध के द्वारा हम दिवगत व्यक्तियो का केवल स्मरण ही ताजा नही रखना चाहते। श्राद्ध के द्वारा दिवगत व्यक्तियो को हम जीवित रखते है। लोकमान्य तिलक आज जीवित होते तो वे १९२० के जैसे न रहते। आज जो व्यक्ति जीवित है, वे अिन अठारह बरसो मे कहाँ से कहा चले गये है! राजाजी को लीजिये, जवाहरलाल जी को लीजिये अथवा सरदार वल्लभभाअी को लीजिये। अिन अठारह वर्षो के बीच अुनका चरित्रक्रम कितना बदल गया है? तो क्या लोकमान्य जैसे प्रतिभाशाली, तेजस्वी देशभक्त जैसे के तैसे रहते? जिन तीन व्यक्तियो का नाम अूपर दिया है, अुनके जीवन मे जो परिवर्तन हुआ है, अुसकी क्या कोई १९२० मे कल्पना कर सकता था? क्या वे स्वयम् अुस वक्त जानते थे कि अुनमे अितना परिवर्तन होगा? फिर हम कैसे कह सकते है कि लोकमान्य तिलक ने आज की स्थिति मे फलाना किया होता और फलाना नही किया होता?

जब देश मे पक्षापक्षिया चलती है, दलबन्दियाँ हो जाती है, तब यह अेक सस्ता तरीका है कि सर्वमान्य दिवगत व्यक्तियो का सहारा लेकर अपने पक्ष को पुष्ट करने की कोशिश हर कोई करे। अिससे प्रचलित परिस्थिति को तो कुछ लाभ होता ही नही, किन्तु दिवगत व्यक्तियो के प्रति बडा अन्याय होता है, जिससे वे अपने आप को बचा भी नही सकते। विशिष्ट परिस्थिति मे लोकमान्य तिलक क्या करते यह अगर हर कोअी कह सके तो लोकमान्य तिलक का 'तिलकत्व' ही

कुछ नही रहा अैसा कहना होगा । हाअीस्कूल और कॉलेज के लडको के लिअे अपना बुद्धिकौशल दिखाने का यह अेक अच्छा साधन है कि वे अैसे सवाल अुठाकर अुनका जवाब लिखने बैठे ।

लोकमान्य का हम जो श्राद्ध करते है जो अुनसे मिली हुअी प्रेरणा को सजीव करने के लिअे ही । उन्होने देश के सामने जो अविरत सेवा का, स्वराज के अखड ध्यान का, त्याग और बलिदान का आदर्श रक्खा, अुसी के कारण देश आज अितना ऊचा चढ सका है । लोकमान्य जैसे देशभक्तो ने राष्ट्रसेवा का क्षेत्र जोतकर तय्यार न किया होता तो गाधी-जी जैसे अुत्तराधिकारियो को आज जितनी सफलता मिली है, अुतनी हरगिज न मिली होती । गान्धीजी ने स्वय सही कहा है कि लोकमान्य ने स्वराज गीता का पूर्वार्ध लिखा कि "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध हक है" और गान्धीजी ने अुस गीता का अुत्तरार्ध पूरा किया कि "व्यापक स्वदेशी के द्वारा मै अुस स्वराज को सिद्ध करूगा ।"

लोकमान्य अपने जमाने के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे । क्योकि अुनकी बुद्धि मे असाधारण वीरता थी । "देश के करोडो लोगो मे वही वीरता छिपी पडी हुअी है, मै अुसे जरूर जाग्रत कर सकता हूँ ।"—यह अुनका विश्वास था । यही विश्वास जिनमे हो, वे ही अपने आपको लोक-मान्य के अनुयायी कहला सकते है । अपनी वीरता मे और अपने देश-बन्धुओ की त्यागशक्ति मे विश्वास यही लोकमान्य का लोकमान्यत्व था ।

धनदौलत का लोकमान्य ने कितना त्याग किया सो हम नही जानते और न जानना चाहते है । वे सरकारी नौकरी मे जाते तो कितना कमाते, हाअीकोर्ट जज बन जाते तो अुन्हे कितनी प्रतिष्ठा मिलती, अिसका जब कोअी हिसाब करता है तो हमे बडी चिढ आती है । लोक-मान्य मनुष्य थे, मनुष्य-सहज आकाक्षाये अुनमे भी थी । अुनके जीवन-कार्य का आरभ बिल्कुल साधारण-सा था । यह सब सही है । लेकिन वे शुरू से अन्त तक बढते ही गये, कही रुके नही । दो बातो मे जब

जब चुनाव करना पडा तब-तब अुन्होने हीन वस्तु को छोडकर अुच्च वस्तु का ही स्वीकार किया। अपने ६३ वर्षो के जीवन मे अुन्होने अपने हाथो अैसा अेक भी काम नही होने दिया जिसके लिए अुन्हे या अुनके देश को लज्जित होना पडे। अुनकी देशभक्ति और वीरता ने देश के दरबार मे कभी द्वितीय स्थान ग्रहण नही किया।

लोकमान्य के जीवन मे दो बाते हमे खास आकृष्ट करती है — असाधारण विद्वत्ता होते हुअे भी अुन्होने कभी अुसे देशभक्ति के मार्ग मे आडे नही आने दिया। जब किसी ने अुनसे कहा कि "आपकी विद्वत्ता त्रिखडपण्डित होने के लायक है। आप सशोधन और अनुशीलन का काम छोडकर राजनीति की अिस गन्दी झझट मे क्यो पडते है!" तब अुन्होने जवाब दिया कि "विद्वत्ता के क्षेत्र मे मेरी देशमाता न कभी वन्ध्या रही है और न आगे अैसा वन्ध्यत्व अुसे आयेगा। स्वराज के बिना अुसका सौभाग्यतिलक नष्ट हो गया है। अगर वह मै अुसे फिर से प्राप्त करा दू तो सारी दुनिया को चकित करने वाले सैकडो सशोधको को वह जन्म देगी।" अिसी मे लोकमान्य का तिलकत्व था।

और दूसरी बात यह थी कि अुन्हे शुरू से स्वदेशी भाषा के द्वारा जनता को राजनैतिक शिक्षा देने की कोशिश करते अग्रेजी पढे हुअे देशनेताओ के सामने बहुत दिनो तक अप्रतिष्ठित रहना पडा। किन्तु अुन्होने अपना रास्ता कभी नही छोडा। देशी भाषा मे ही स्वदेश की शक्ति है, यह वे अच्छी तरह जानते थे। देश के करोडो अनपढ भाअियो की जागृति मे ही स्वराज की कुजी है, यह भी वे जानते थे। अिसलिअे अुन्होने शुरू से यही काम किया और अग्रेजी मे लिखने बोलने और प्रतिष्ठा रुवाब भी देखनेवाले लोगो से वे हमेशा लडते ही रहे। लोकमान्य कोअी अजातशत्रु धर्मराज नही थे। कडुआपन अुनमे काफी था। बडे लड़ाकू, जुझार थे। किन्तु उनमे वैयक्तिक द्वेषभाव बिलकुल नही था। स्वराज-प्रेमी व्यक्ति से अुनका चाहे कितना ही झगडा क्यो

न हुआ हो, तो भी अुन्हे अुसे सहयोग देने मे अुन्हे किसी तरह की झिझक नही थी। अपने झगडे से अुन्होने देश को कभी कमजोर नही किया।

लखनअू कॉंग्रेस के समय और खिलाफत आन्दोलन के दिनो मे अुन्होने मुसलमानो को यह दिखा दिया कि वे अुनके शत्रु नही थे। शत्रुता मे भी वे आजन्म अेकनिष्ठ ही रहे। अुनका अेक ही शत्रु रहा और वह ब्रिटिश साम्राज्य की नौकरशाही। अगर लोकमान्य की अेक-निष्ठा हम देश मे प्रस्थापित कर सके तो आज की परिस्थिति मे स्वराज का सवाल हल करने मे अेक साल भी नही लगेगा।

'सर्वोदय' अगस्त, १९३८।

— ० —

अुनका स्मरण

जिम दिन लोकमान्य तिलक ने अपनी जीवन-यात्रा पूरी की अुसी दिन महात्मा गाधीजी के राष्ट्र व्यापी सत्याग्रह का प्रारभ हुआ। ऑगस्ट महीने का पहला दिन राष्ट्रपुरुष लोकमान्य का पुण्यस्मरण कराता है, और साथ साथ वह सत्याग्रह जैसे तेजस्वी ब्रह्मास्त्र की जयति भी है। अुस दिन के लिये मुझे प्रश्न पूछे गये थे। मेरे अुत्तर लोकमान्य के चरणो मे अजलिरूप अर्पण करता हूँ।

प्र० लोकमान्य तिलक की कौनसी खासियत आज, अितने सालो के बाद आप के सामने आती है ?

अु० ध्येय और व्यवहार का समन्वय कर के हृदय से बिना हारे (हृदयेन अपराजित) सतत लडते रहना यह लोकमान्य तिलक की खासियत आज भी मेरी आखो के सामने ताजी है।

प्र० : लोकमान्य तिलक के जीवन मे से कौन-सा प्रसग आप के लिये स्फूर्तिदायक है ?

अु० बम्बअी के हाअीकोर्ट मे न्यायमूर्ति दावर ने छ साल की सजा दी तब लोकमान्य ने जो जवाब दिया कि "There is a higher power than this Court, that guides the destinies of Men and Nations and it seems to be the will of Providence that the cause I represent should prosper more by my suffering than by my remaining free" (अिस न्यायासन से बढकर श्रेष्ठ अैसी अेक शक्ति है जो व्यक्तियो के और राष्ट्रो के भाग्य का नियत्रण करती है। मुझे तो अैसा ही लगता है कि अुस परमात्मा की

ही अिच्छा है कि जिस स्वराज्य-कार्य की दीक्षा मैने ली है अुसका बढावा मेरे मुक्त रहने की अपेक्षा मेरे कष्टो के सहन करने से ही अधिक हो ।) यह मुझे आज भी स्फूर्तिदायक मालूम होता है ।

प्र० आज के भारत ने लोकमान्य के जीवन से कौनसा सदेश लेना चाहिये ?

अु० : आज के भारत ने लोकमान्य के जीवन से यह बोध लेना चाहिये कि अखड कर्मयोग के साथ-साथ आदमी को अपनी ज्ञानोपासना ढीली होने नही देनी चाहिये ।

अक्तूबर १९५९

— ० —

असंतोष के जन्मदाता

साबरमती अहमदाबाद से आकर स्वराज्य-नगरी बम्बअी मे मैने लोकमान्य तिलक का आखरी दर्शन किया था (१९२०)। पैंतीस बरस के बाद फिर अुसी बम्बअी मे अुस राष्ट्रपुरुष का आज पुण्य-स्मरण कर रहा हूँ। बम्बअी के अच्छे-से-अच्छे डॉक्टर अुस वीर पुरुष को प्राणवायु की मदद से बचाने की कोशिश कर रहे है और पडोस के अेक बडे कमरे मे देश के अनेक नेता सचिन्त बैठे है, अैसा था वह दृश्य। महाराष्ट्र के अेक पंगु किन्तु प्राणवान् कवि ने लोकमान्य को अुद्देश करके गाया था—

"तुझ्या प्रयत्ने, तुझ्या देखता, वसुधरा सुदरा,
लेवो श्रीमत् स्वातत्र्याचा भुवन-रुचिर बिजवरा।"

तुम्हारे प्रयत्न के फलस्वरूप, तुम्हारे देखते, यह हमारी रमणीय मातृभूमि सर्व शुभ गुणो से सम्पन्न अैसी स्वतत्रता का आभूषण पहने !

अैसा तो हो न सका। लोकमान्य तिलक आज़ाद भारत का दर्शन न कर सके। लेकिन जिन्हो ने अुन से प्रेरणा पायी, अैसे अुन के अनेक साथी स्वराज्य-सूर्यका अुदय देख सके है, स्वराज्य चला रहे है, और लोकमान्य के आजीवन-प्रयत्न का कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण कर रहे हैं।

जब सन् १८८५ मे काग्रेस की स्थापना हुअी, तब अुस सस्था का अुद्देश प्रजा की छोटी-मोटी माँगे सरकार के सामने पेश करने का था। "हम सरकार को हमारी माँगे समझा देंगे, सरकार न माने तो सरकार की चोटी जिन के हाथ मे है अुस ब्रिटिश जनता को समझा देंगे, अैसी साध लेकर काँग्रेस की स्थापना हुअी थी। "अिण्डिया" नाम का अेक

अखबार कॉंग्रेस के खर्चे से विलायत मे चलता था, जो विलायत के पार्लमेंट के सदस्यो को मुफ्त बॉटा जाता था और अुसका सम्पादन हिन्दुस्तान के हितचिंतक अंग्रेजो के हाथ मे था। अुनदिनो की कॉंग्रेस ने प्रथम भारत की जनता को ही समझाने की बात की ओर ध्यान ही नही दिया।

जबतक यही नीति रही तबतक न भारत मे जन-जाग्रति हुअी, न देश का सामर्थ्य बढा।

लोकमान्य ने सोचा कि देश का स्वराज्य जन-जाग्रति के बिना हो नही सकता। अिसलिये जो बाते करनी है वह भारत की जनता के सामने, अुसी की भाषा मे करनी चाहिये। लोकमान्य ने अपनी सारी शक्ति अिसी दिशा मे चलायी।

जो लोग सरकार के साथ अनुनय-विनय करते थे, वे 'राजमान्य' होते थे। तिलक ने जनता को, लोक-समुदाय को, जाग्रत करने का बीडा अुठाया अिसलिये वे "लोकमान्य" हुअे। भारतपर राज करनेवाले अंग्रेजो ने तिलक को अपनी दृष्टि से जो अिल्काब दिया अुसमे लोकमान्य की सच्ची कदर पायी जाती है। अुन्होने लोकमान्य को "Father of Indian unrest" कहा। सचमुच लोकमान्य के जीवन-कार्य का अिस से बढकर कोअी वर्णन हो नही सकता। जो प्रजा परराज्य की आदी बनती है और पर-स्वाधीन रहने का अपमान हजम कर जाती है, अुस के लिये सच्ची अुन्नति के सब रास्ते बन्द हो जाते है,

गॉव के लोग कहते है कि सोये हुअे आदमी के पाँव को जब चूहा काटता है तो अैसा फूक-फूँककर काटता है कि पॉव का कुछ मॉंस चूहा खा जाये तो भी सोया हुआ आदमी जागेगा नही। अंग्रेज जैसी चतुर प्रजा जब कही राज करती है तब वह अपना दमन, आतक और शोषण चूहे के जैसा चलाती है। गफलत मे सोयी हुअी प्रजा गफलत मे ही रह जाती है।

अैसी प्रजा को जाग्रत करना और पर-राज्य के प्रति लोगो मे तीव्र

असतोष पैंदा करना यह् कोअी मामूली सिद्धि नही थी ।

जो जागृति लोकमान्य तिलक ने सिद्ध की, अुसी से लाभ अुठाकर देश को आगे ले जाने का कार्य महात्मा गाधी ने किया । अेक छोटी सी मिसाल से यह बात हमारे ध्यान मे आयेगी । लोकमान्य जब विलायत गये तब अुन्होने कहा कि कॉग्रेस की ओर से जो अिण्डिया अखबार विलायत मे चलता है, वह वहाँ के अग्रेजो के हाथ मे नही रहना चाहिये, हमारे हाथ मे आना चाहिये ।

गाधीजी ने कहा कि भारत के पैसे से विलायत मे जन-जागृति का काम हम करे ही क्यो ? "अिण्डिया" पेपर ही बन्द कर दिया जाय । वैसा ही हुआ । गाधीजी कहते थे कि हम छोटी-सी शहनाअी लेकर विलायत मे जाकर बजाये वह क्या काम का ? हिन्दुस्तान मे हम अैसे जोरो से अपना नक्कारा बजायेंगे कि अुस की प्रतिध्वनि ही विलायत पहुँचकर वहाँ की जनता को जाग्रत करेगी ।

लोकमान्य का ही अनुसरण कर के गाधीजी ने लोक-जागृति का काम किया और दोनो के पुरुषार्थ से जनता जाग्रत हुअी । जिस दिन लोकमान्य ने अपना नश्वर शरीर छोडा, अुसी दिन गाधीजी ने भारत-व्यापी सत्याग्रह का मगलाचरण किया । जो स्वराज का झडा लोकमान्य ने अुठाया था, अुसे अेक क्षण के लिये भी गाधीजी ने जमीनपर गिरने नही दिया ।

अगर लोकमान्य के पुरुषार्थ की सच्ची कदर किसी ने की तो वह गाधीजी ने । आज वे दोनो हमारे बीच नही है । लेकिन दोनो के पुरुषार्थ से जो आजादी रूपी अमृतफल हमे मिला, अुस का स्वाद हम प्रसन्नता-पूर्वक ले रहे है । पहली अगस्त का दिन जिस तरह लोकमान्य की पुण्यतिथि का है, श्राद्ध का है, वैसे ही सत्याग्रह के प्रादुर्भाव का भी है । अरणि के मथन से जिस तरह ज्वाला प्रकट होती है, वैसे ही लोकमान्य के जीवन-मथन से गाधीजी के सत्याग्रह की ज्वाला प्रकट हुअी । अिसलिये

आज हम कृतज्ञतापूर्वक स्वातत्र्य अुपासक लोकमान्य का स्मरण करे और अुन्हे हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पण करे ।

लोकमान्य अष्टपहलू विद्वान थे । अुन का सस्कृत का अध्ययन गहरा था । धर्मचिंतन कम नही था । गणित और गणित-ज्योतिष मे अुन्हे असाधारण दिलचस्पी थी । अुन के जैसे वृत्त-विवेचक (Journalist) भारत मे बहुत नही हुअे । अिसीलिये तो वे देश के अप्रतिम नेता हुअे । वे जितने विद्वान थे, कार्यकुशल भी अुतने ही थे, अुस से भी बढकर वे निडर वीर थे । कष्ट को सहन करना और हर तरह के खतरे का सामना करना अुन के जीवन का नित्य व्यवसाय था । और खूबी यह कि अुन मे जो कुछ भी शक्ति थी—लोकोत्तर शक्ति थी—वह सारी अुन्हो ने स्वराज्य प्राप्ति के लिये अर्पण की थी ।

अैसी आजीवन तपस्या के फलस्वरूप अुन के मुह से अेक अृपिवाक्य निकला—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मै अुसे लेकर ही रहूँगा ।"

अिसी अृषिवाक्य की फलश्रुति है कि हम आज़ाद बनकर दुनिया की कुछ-न-कुछ सेवा करने के योग्य बने है ।

अब लोकमान्य की वाणी कि, "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है," दुनिया की तमाम पराधीन प्रजाओ का प्रेरणामत्र हो चुका है ।

अगम्त १९७०

— ० —

स्वराज्य के ऋषि

महाराष्ट्र मे जयन्ती कहते है जन्मतिथि को। मृत्युतिथि के लिअे हमारा शब्द है पुण्यतिथि। अवतारी पुरुषो की जन्मतिथि मनाअी जाती है। रामजयन्ती, कृष्ण-जयन्ती दोनो जन्म-तिथियाँ है। आजकल बिना सोचे ही जयन्ती शब्द अिस्तेमाल होने लगा है।

बुद्ध भगवान के बारे मे अैसा माना जाता है कि अुन का जन्म-दिन, मृत्यु दिन, और जिस दिन अुन्हे बोधी यानी ज्ञान प्राप्त हुआ वह दिन तीनो अेक ही थे। वैशाखी पूर्णिमा को अगर कोअी बुद्ध-जयन्ती कहे या बुद्ध की पुण्य तिथि कहे तो कोअी फर्क नही पडता। हम तो जन्म-मृत्यु दोनो को छोडकर वैशाखी पूर्णिमा को बोधी-जयन्ती कहते, है। क्योकि अुस दिन अुन को तारक-ज्ञान प्राप्त हुआ।

आज हम तिलक-जयन्ती मनाने जा रहे है। लोकमान्य तिलक का जन्म और भारत के स्वातत्र्य के सकल्प का जन्म मानो अेक ही साथ हुअे। अग्रेज जिसे गदर कहते है, सिपाहियो का युद्ध कहते है अुस का प्रारम्भ १८५६-५७ मे हुआ।

अग्रेजी राज्य अुखाडकर फेक देने के हेतु जो यह प्रवृत्ति हुअी अुस से तो अग्रेजो का राज्य मजबूत ही हुआ। अुस के बाद करीब ३० वर्ष हुअे और काग्रेस का जन्म हुआ। अिसका अुद्देश्य अग्रेजो का राज्य सुधारकर, लोकप्रिय बनाकर अुसे मजबूत करने का था। लेकिन अुसी काग्रेस ने दादाभाअी नवरौजी, लोकमान्य तिलक और महात्मा गाधी जैसो से प्रेरणा पाकर अग्रेजो का राज्य हमारे देश से हटा दिया और हमे सौ टका शुद्ध स्वराज्य मिल गया।।

लोकमान्य के जीवन मे और अुन की मनोरचना मे १८५७ साल की बगावत भी थी और काग्रेस का वैधानिक आन्दोलन भी था। गाधीजी ने तीसरा रास्ता निकालकर सिद्ध किया कि नये आदर्श के लिअे पुराना मार्ग जैसे का वैसा काम नही आता।

लोकमान्य तिलक को स्वराज्य चाहिअे था—जिस रास्ते मिले अुस से लेने को वे तैयार थे। १८५७ साल की विरासत के साथ अुन का जन्म हुआ था। अिग्लैण्ड का, यूरप का और अमरीका का अितिहास अुन्हो ने पढा था। अेशिया की क्राति अुनकी नजर के सामने ही हुअी थी। दक्षिण आफ्रिकाका बोअर युद्ध, सुदूर पूर्व का रूसो-जापानी युद्ध, कैसरका यूरोपीय युद्ध अुन्हो ने देखा था। गाधीजी के दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रहका अितिहास वे जानते थे। लेकिन गाधीजी की युद्ध-पद्धति के साथ वे समरस नही हो सकते थे। पैसिव रेजिस्टेन्स की अुपयोगिता वे जानते थे। आयरलैण्ड के साथ अुन्हे पूरी हमदर्दी थी। कौनसा मार्ग वैध, और कौनसा मार्ग अवैध अिसकी चर्चा मे अुन्हे हार्दिक दिलचस्पी नही थी। देश की आज की हालत मे हम क्या कर सकते है, और क्या नही कर सकते अिसका खयाल तो अुन्हे अखण्ड रहता था। देशमे अग्रेजो के राज्य के प्रति असतोष फैलानेका और लोकशक्ति सगठित करने का अेक भी मौका वे छोडते नही थे।

देशोद्धारके जितने भी कार्यक्रम देशके भिन्न-भिन्न नेता जनता के सामने रखते थे अुनके साथ लोकमान्य की पूरी हमदर्दी रहती थी। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के ध्येय को या आदर्शको वे कभी भी बाजू पर नही होने देते थे। सामाजिक सुधार अुन्हे अप्रिय नही था लेकिन वे जानते थे कि अिस से लोकशक्ति अेकाग्र नही हो सकती। अिस वास्ते वे सामाजिक सुधार की कभी-कभी अवहेलना भी कर देते थे।

देशकी आर्थिक हालत सुधारने का महत्त्व अुन्हो ने पहचाना था। स्वदेशी का आन्दोलन तो महाराष्ट्र मे ही शुरू हुआ था। अुस आन्दोलन को

लोकमान्य ने जोरोसे चलाया। लेकिन वे जानते थे कि अुनके जमाने मे लोग जिसको स्वदेशी जानते थे अुससे स्वराज्य तुरन्त नही मिलता। अुन्होने ब्रिटिश माल के बहिष्कार की बगाल की प्रवृत्ति को पसन्द किया। वे मानते थे कि बहिष्कार से हम अग्रेजो की तिजारत को नुकसान पहुँचा सकेंगे और फिर अग्रेजोको हमारी मागके बारेमे सोचना ही पडेगा।

स्वराज्य प्राप्त करनेका अेक महत्त्व का साधन है विचार-परिवर्तन। अुसके लिअे राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षाके द्वारा हम अपना सच्चा अितिहास समझ सकेंगे, भारतीय आदर्शोंको सजीव कर सकेंगे, धार्मिक तेज फिर से हृदय मे भर सकेंगे। राष्ट्रीयता हमारे चरित्र का अेक अग बनेगी। अिस अुद्देश्य से और अिस अुम्मीद मे राष्ट्रीय शिक्षणकी सस्थाअें खोली गअी। अिसमे बगाल, और महाराष्ट्र की ओर से अच्छा प्रारम्भ हुआ।

लेकिन ये सब स्वराज्य के साधन थे। आर्थिक, और शैक्षिक, सामाजिक सुधार देश मे होते रहेगे। जो सबसे अधिक जरूरी है वह राष्ट्र के मस्तिष्क और हृदय को स्वराज्य के लिअे अेकाग्र करना। अिसीलिअे लोकमान्य ने राष्ट्र की नजर अेक क्षण के लिअे भी स्वराज्य से अलग नही होने दी।

रचनात्मक कार्यक्रम का महत्त्व वे जानते थे। प्लेग के दिनो मे जनता की सेवा करने के लिअे वे कटिबद्ध हुअे थे। राष्ट्रीय और धार्मिक अुत्सवो मे जान डालकर लोगो मे नअी जाग्रति लानेका अुन्होने अुत्कट प्रयत्न किया।

वे डरते थे कि हमारे देश की भोली प्रजा अंग्रेजो के प्रचार मे फँस जायगी और अल्प-सतोषी बनेगी। नागरिको के सब अधिकार और स्वायत्त-शासन' अिसीपर जोर देने की अनकी नीति अखण्ड रही। देश की कमजोरी का पूरा ख्याल होने के कारण अुन्होने कभी असहयोग का कार्यक्रम देश के सामने नही रखा। 'जो मिलता है अुसे ले लो,

अुससे जो-कुछ भी फायदा होता हो अुठा लो, लेकिन भूलना नही कि जो मिलता है वह कुछ नही है' यह थी अुनकी सर्व-सामान्य राजनीति ।

लेकिन जब राजनीतिक क्षेत्र मे गान्धीजी आये, तब अुनकी असहयोग नीति का लोकमान्य ने समर्थन ही किया । तिलक के बहिष्कार के कार्यक्रम मे असहयोग का सिद्धान्त था ही । अुनकी राष्ट्रीय शिक्षा भी असहयोग की बुनियाद पर ही खडी थी । असलिअे गान्धीजी का असहयोग अुनके लिअे नया या अरुचिकर नही था ।

सब बातो को सोचते हुअे हमे कहना पडेगा कि गान्धीजी को देश जागृति की जो समृद्ध विरासत मिली अुसमे लोकमान्य तिलक का हिस्मा कम नही था । बगालके राजा रामगोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, अरविन्द घोप, पजाब के लाला लाजपतराय, लाला हन्सराज, महात्मा मुन्शीराम, बम्बअी के दादाभाअी नवरोजी, गोखले, तिलक आदि राष्ट्रपुरुषोका और आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज प्रार्थना समाज, स्वदेशी आन्दोलन, काग्रेस का कार्य, सामाजिक सुधार, धर्म जाग्रति, स्वदेशी भाषाआ की सेवा, आदि अनेक राष्ट्रीय सस्थाओ की और मब राष्ट्रीय आन्दोलन ५० वर्ष तक जो कुछ भी कर सके अुसकी सारी विरासत गान्धीजी ने पा ली और कुशल किसान की तरह अुन्होने अुससे पूरा-पूरा लाभ अुठाया । अिन सब लोगो मे स्वातन्त्र्य के अृपि और स्वराज्य के आचार्य दो ही थे—दादाभाअी नवरोजी और लोकमान्य तिलक ।

काग्रेस के मचसे स्वराज्यका प्रथम नाम लिया दादाभाअी नवरोजीने, लेकिन वह शुरू से घर-घर पहुँचाया लोकमान्य तिलक ने ।

१८५७ के सालका सिपाही-विद्रोह, १८८५साल का काग्रेस का जन्म और १९२० का सत्याग्रह का प्रारम्भ तीनो साल और तीनो घटना लोकमान्य तिलक के जीवन के साथ जुडी हुअी है । १९२०के साल के बाद गान्धीजी ने जो अपनी प्रवृत्ति शुरू की अुसके लिअे अुन्होने अेक करोड रुपअे का फण्ड अिकट्ठा किया लेकिन अुसको नाम दिया तिलक स्वराज्य

फन्ड। तिलक के बिना स्वराज्य का और स्वराज्य के बिना तिलकका नाम गान्धीजी ले नही सकते थे।

स्वराज्य का अनुभव लेने वाले हम लोग स्वराज्य के ॠषि तिलक का अत्यन्त आदर के साथ श्राद्ध करे और कहे कि जिस दिन तिलक का जन्म हुआ अुसी दिन हमारे पारतन्त्र्यकी बेडियाँ टूटने लगी।

जून १९७०

— ० —

लोकमान्य को श्रद्धांजलि

लोकरान्य की विभूति अुत्तुग पहाड के जैसी थी। पहाड की छाया जैसे मीलो तक दूर जाती है वैसे ही अुन की जीवन-स्मृति पीढियो तक पहुँचेगी।

लोकमान्य स्वभाव के योद्धा थे। ब्रिटिश अमलदारो ने भारत मे जो अग्रेजी राज्य कायम किया, अुमका अेक शक्तिशाली, सुसगठित गुट था। अिस गुट को —अिस ब्यूरोक्रैसी को—लोकमान्य ने नाम दिया था—नौकरशाही। वे जानते थे कि बादशाह की बादशाही से भी यह नौकरशाही अधिक समर्थ है। बादशाह बूढा हो सकता है, थक जाता है, अुसका असर अुसके राजतन्त्र पर हो सकता है, लेकिन अिस नौकरशाही मे नये-नये लोग आते है और अिसे चिर-यौवन प्रदान करते है। अैसी नौकरशाही के साथ अखड युद्ध चलाने का यज्ञ-ककण लोकमान्य ने अपने हाथ मे बाँध लिया था। अिस युद्ध मे न कभी अुन्होने अपनी नजर अिधर-अुधर होने दी, न कभी अपने सकल्प को शिथिल होने दिया।

लोकमान्य प्रकाड विद्वान् तो थे ही, अपना अखबार "केसरी" चलाते चलाते जिस किसी भी विषय पर अुनको लिखना पडा अुस विषय का सारा-पूरा अध्ययन वे करते थे। अुनके जैसे वाद-मल्ल को अैसा किये बिना चारा ही नही था। वाद-क्षेत्र की कठोरता वे जानते थे। कभी दया मागनी नही, कभी देनी नही—यह था अुनका वाद-विवाद का दण्डक।

भारत के सामाजिक दोष, कमजोरिया सब वे जानते थे, लेकिन अपने समाज के बारे मे वे कभी कठोर नही हुअे। वे कहते थे—गिरे

हुअे पर प्रहार करना अच्छा नही । अिस चतुर और समर्थ सरकार के सामने जो प्रजा अेक बार सन्' ५७ मे हार गअी अुस मे आत्मविश्वास अुत्पन्न करने का काम सबसे महत्त्व का है। स्वराज्य पाने के बाद दूसरा काम क्या है ? सामाजिक कुरीतियाँ और कमजोरियाँ दूर करने का काम अखड चलते रहेगे।" दिल से समाज-सुधारक होते हुअे भी सुधारक-दल मे वे शरीक नही हुअे और जरूरत पडने पर सुधारक-दल का उन्होने सतत विरोध ही किया। परदेशी सरकार की मदद से समाज-सुधार करना अुन्हे मान्य नही था। वे कहते थे कि कुछ सुधार अच्छे होगे और जल्दी भी होगे, लेकिन परदेशी सरकार को हमारे सामाजिक जीवन मे हस्त-क्षेप करने की आदत पडने पर हमारी हस्ती ही मिट जाएगी। 'बुड्ढी मर जाये अिसका अफसोस नही, लेकिन यमराज को घर मे घुसने का मौका मिले यही खतरे की बात है।"

सन् १९१६ या १७ की बात होगी, बेलगाँव की राजनैतिक परिषद् के लिअे गाधीजी को बुलाया गया था। वहाँ हमने लोकमान्य तिलक और गाधीजी के बीच अेक अेकान्त मुलाकात का प्रबन्ध किया था। दोनो ने अेकान्त मे खूब बाते की। क्या बाते हुअी, दोनो मे से किसी से भी किसी ने नही पूछा। लोकमान्य ने श्री गगाधर राव देशपाण्डे से अितना ही कहा—'यह आदमी हमारा नही है। अिसका रास्ता अलग है। लेकिन आदमी है नेक। अिसके हाथो हिन्दुस्तान का अकल्याण कभी नही होगा। जिसका हम कभ। भी विरोध न करे।'

लोकमान्य ने अपना सारा जीवन अनन्य निष्ठा से स्वराज्य-प्राप्ति की कोशिश करते नौकरशाही से अखड-युद्ध चलाया। १९२० मे, जब लोकमान्य का देहान्त हुआ तब अुसी रात को महात्माजी ने सकल्प किया कि स्वराज्य के अिस अनन्य सेवक के हाथ का झडा नीचे नही गिरने दूँगा। अपने सकल्प के अनुसार अुसी दिन गाधीजी ने असहयोग की घोषणा की, जो राजनीति मे आध्यात्मिक गदर का अेक रूप था।

लोकमान्य का जन्म और भारतीय विद्रोह का जन्म करीब अेक ही समय पर हुआ। आज हम लोकमान्य के जन्म-की शत-सावत्सरी के दिन स्वराज्य के वायुमण्डल मे स्वराज्य के अिस ॠषि को श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं।

२३-७-५६

स्वराज्य के प्राण

पिछले सौ बरस मे जिन लोगो ने सर्वांगीण सेवा के द्वारा महाराष्ट्र की सेवा की, और महाराष्ट्र को बनाया अुनमे लोकमान्य तिलक का नाम अग्र-गण्य है। महाराष्ट्र का अितिहास, महाराष्ट्र का स्वभाव और महाराष्ट्र की आकाक्षाओ के साथ, वे अेक-जीव थे, अेक-हृदय थे। तो भी लोकमान्य मे प्रातीयता नही थी। महाराष्ट्र का दृष्टिकोण भारत के सामने रखने के लिअे अुन्हो ने अग्रेजी साप्ताहिक 'मराठा' चलाया। लेकिन अुन्हो ने अपने जीवन-कार्य और लोकसेवा के लिअे अपने मराठी पत्र 'केसरी' को ही प्रधानता दी थी। वे जानते थे कि राष्ट्रीय शक्ति का स्रोत लोक-जीवन मे से ही अुत्पन्न होगा और बढेगा।

अेक दफे अुन्होने विलायत के अेक राष्ट्रपुरुष से कहा था कि जिन भारतीयो के नाम आप ले रहे है, वे मुझसे श्रेष्ठ होगे, विद्वान तो है ही, किन्तु आपको कबूल करना होगा कि "भारत की जनता का प्रतिनिधि मै हूँ।" अिस अेक वाक्य मे लोकमान्य का आत्मविश्वास और राजकीय जीवन मे अुन का स्थान, दोनो व्यक्त होते है। अग्रेज लोग भी समझ गये थे कि भारत मे अगर शातियुक्त प्रगति का वायुमण्डल तैयार करना है, तो आखिर समझौता करना पडेगा लोकमान्य तिलक से ही। अिसके लिये वे तैयार नही थे।

लोकमान्य तिलक के बाद अुनका स्थान लिया महात्मा गाधी ने। और अग्रेजो को गाधीजी के साथ ही समझौता करना पडा।

लोकमान्य तिलक की अगर किसी से तुलना करनी है तो मै तो अुनकी तुलना सरदार वल्लभभाअी पटेल से ही करूगा। लोकमान्य

तिलक की विद्वता अुनकी अपनी थी। सस्कृत साहित्य का और धर्म का ज्ञान अिस विषय मे अुनकी योग्यता असाधारण थी। लेकिन प्रजाहृदय के नेतृत्व मे और राष्ट्रनीति को लौहपुरुष की दृढता से चलाने मे लोकमान्य और सरदार अेक ही कोटि के राष्ट्रपुरुष थे।

हिन्दू समाज और हिन्दू सस्कृति का नेतृत्व पूरी सफलता से किया लोकमान्य ने। किन्तु राजनीति मे अुनको काग्रेस की दृष्टि ही पूरी तरह से मान्य थी। अिस विषय मे लोकमान्य तिलक और महामना मालविया के बीच कितनी समानता थी और कितना फर्क था अिसका सूक्ष्म अभ्यास होना चाहिअे। अुत्तर भारत मे दीर्घ काल तक मुस्लिम राज्य चला और अिस्लामी सस्कृति का भारतीय जीवन पर गहरा असर हुआ अिस बात को हम भूल नही सकते। साथ-साथ हम यह भी भूल नही सकते कि पठाण और मुगलो के साथ लडकर छत्रपति शिवाजी ने और अुन के उत्तराधिकारियो ने जिस स्वराज्य की स्थापना की वह था 'हिन्दवी' स्वराज्य। 'हिन्दू' स्वराज्य नही। 'हिन्दवी स्वराज्य' छत्रपति शिवाजी के शब्द है। लोकमान्य तिलक ने भी अपना सारा जीवन हिन्दवी स्वराज्य की नीव मजबूत करने मे ही व्यतीत किया।

धर्म के मामले मे लोकमान्य हृदय से बुद्धिवादी थे। लेकिन विदेशी राज्य से लडकर स्वराज्य स्थापना के लिअे राष्ट्रीय अेकता की जरूरत वे महसूस करते थे अिसलिअे भारत के आन्तरिक जीवन मे वे किसी किस्म का बुद्धिभेद पसन्द नही करते थे।

लोकमान्य की पूरी कदर की महात्मा गाधी ने। अिसीलिअे अुन्हो ने स्वराज्य के साथ लोकमान्य तिलक का नाम जोड दिया।

परराज्य के प्रति तीव्र से तीव्र असन्तोष सारे राष्ट्र को सिखाया लोकमान्य तिलक ने। आज अगर सारे राष्ट्र मे हम स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिअे सब भेदभाव भूलकर तुरन्त अेक हो सकते है तो अिस का सारा

पूरा श्रेय है लोकमान्य तिलक जैसे लोकोत्तर काग्रेसनिष्ठ आजादी के अुपासको को ।

किसी विदेशी ने मुझसे पूछा था कि लोकमान्य कौन थे ? मैने कहा, "भारत की स्वाधीनता और भारत की अेकता के लिअे सर्वस्व न्यौछावर करनेवाले, और भारत हृदय के प्रतीक ।"

१ अगस्त १९६६

— o —

लोकमान्य का हिन्दू धर्म

लोकमान्य का तैलचित्र अभी खोलते ही मुझे उस दिन का स्मरण हुआ जब १९२० की पहली अगस्त को मैंने बम्बअी के सरदारगृह मे हमारे राजनैतिक नेता लोकमान्य तिलक का अन्तिम दर्शन किया था। महाराष्ट्र के और भारत के कअी श्रेष्ठ सेवक लोकमान्य का अन्तिम दर्शन करने वहाँ अिकट्ठा हुअे थे। और लोकमान्य अकेले मृत्यु के साथ लड रहे थे। महाराष्ट्र के अच्छे-से-अच्छे डॉक्टर दिनरात उनकी सेवा मे थे। किन्तु किसी की न चली। और हम अपने अेक लोकोत्तर नेता को और भारतमाता के सुपुत्र को खो बैठे।

भारत की आजादी, के और व्यक्तिश लोकमान्य के भी अेक दुश्मन ने लोकमान्य को The Father of Indian unrest कहा था। मै नही मानता कि लोकमान्य के लिअे अिससे और अच्छी श्रद्धांजलि हो सकती है। सन् १८५७ के विफल प्रयत्न के बाद देशमे जो निराशा और ग्लानि आयी थी उस के परिणामस्वरूप भारत की निराश जनता गुलामी के साथ समझौता करके आरामका सेवन कर रही थी। और चन्द मनीषी अंग्रेजो के राज्य मे अिधर-उधर के थोडे सुधार माँगकर सन्तुष्ट थे। अैसे समय सारे देश मे असन्तोष फैलाकर राष्ट्र को जाग्रत करने का काम जिन महाभागो ने किया उनमे लोकमान्य की सेवा अितनी प्रखर और अुज्ज्वल थी कि भारतीय असन्तोष के जनक का बिरुद अुन के लिअे योग्य ही था।

अुस समय के हम सब युवक गण लोकमान्य की अनन्य भक्ति अिस-लिअे कर रहे थे कि हमे विश्वास हो गया था कि यह नेता भारत को आजाद किये बिना नही रहेगा। "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध हक है,

अधिकार है। उसे मै लेकर ही रहूँगा।" यह लोकमान्य की उक्ति मरे हुओ को भी जिन्दा करती थी।

उन दिनो हमारी भक्ति के तीन आराध्य दैव थे। बाल गगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और बिपिनचन्द पाल। लाल-बाल-पालकी यह त्रिमूर्ति भारतीय स्वराज्य की आशा थी।

जब लोकमान्य तिलक को अग्रेज सरकार ने छ बरस की सजा करके ब्रह्मदेश भेज दिया तब महाराष्ट्र के नवयुवक बेचैन हुअे। उन्होने हिंसा का मार्ग ग्रहण किया, लेकिन हिसा के साथ तुरन्त सरकार की प्रति-हिसा आयी। राष्ट्र दब गया डर के मारे नही, किन्तु किकर्तव्यतामूढ होकर। बगाल, महाराष्ट्र, पजाब, मद्रास आदि प्रान्तो के क्रान्तिकारी नवयुवको ने बहुत कुछ सोचा, किंतु राष्ट्रीय उत्थान नही हो सका।

अैसे समय दक्षिण आफ्रिका मे सत्याग्रह का आन्दोलन सफलता-पूर्वक चलाकर महात्मा गाधी लौटे थे। उन्हो ने बताया कि राष्ट्र का तेज अहिसक आत्मशक्ति से ही जाग्रत हो सकता है। और सचमुच पाच साल के अन्दर गाधीजी ने देश के अन्दर स्वराज्य-जागृति का राष्ट्रको दर्शन कराया। पहली अगस्त १९२० को असन्तोष का जमाना खतम हुआ और सत्याग्रही प्रतिरोध का जमाना शुरू हुआ। और राष्ट्र की आशा जो करीब बुझ गअी थी फिरसे सजीवन हुअी। लोकमान्य का ही झण्डा गाधीजी ने हाथ मे लिया और स्वराज्य का आन्दोलन राष्ट्र-व्यापी, जनताव्यापी बनाया और तीस बरस के अन्दर लोकमान्य का सकल्प सिद्ध करके बताया।

अब तो हम कब के आजाद हो गये है। अब वह पुरानी बाते अितिहास मे दर्ज हो चुकी है। अब हम अपने देश का अधिकार अपने हाथमे लेकर कौनसी चिंता वहन कर रहे है अिस का ही ख्याल आज मन मे प्रधानतया आता है।

अिसी समय भारत-भाग्य-विधाता मि०वेजवूड बेन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर अिण्डिया भारत आये थे। और अुन्हो ने भारत के प्रधान नेताओ को मिलने बुलाया था। कहते है कि अैसे नेताओ मे केवल दो ही स्वदेशी पोशाक मे मिलने गये थे। लोकमान्य तिलक और महात्मा गाधी। भारत-सचिव ने सिर्फ अिन दोनो से ही बातचीत की। अुसने लोकमान्य से पूछा, "क्या आप मानते है कि स्वराज्य पाकर आप खुशी होगे?" लोकमान्य ने जो जबाव दिया वह उनके जैसे क्रान्तिकारी ही दे सकते थे। उन्हो ने कहा, "सुख काहे का? स्वराज होने के बाद ही हमारा सिर दर्द शुरू होगा। आराम और सुख तो आज हैं। राज आप कर रहे है। सब चिंता आपके सिरपर है। भारत पर दुश्मनो का आक्रमण हुआ तो रक्षा का प्रबध आपको ही करना पडेगा। हम तो आराम से सो सकेगे। किंतु हमे अैसे आरामकी शरम है। हम चाहते है कि हमारी चिता हम ही वहन करे। अिसी मे हमारी अिज्जत है।"

लोकमान्य का वह वचन आज स्वराजके १८ वर्षो के बाद सही दिख पडता है और उसी मे से हम अदम्य प्रेरणा पाते हैं।

(गाँधीजी के साथ भारत-सचिव का जो सवाल-जबाव हुआ उस की भूमिका ही अलग थी। वह अितना ही महत्त्व का था। मिस्टर बेन ने महात्माजी से पूछा, "गाँधीजी, आप तो धर्म-पुरुष है, सेवापरायण है। राजनीति के क्षेत्रमे कहाँसे आ फँसे है?" गाधीजी ने जबाव दिया, "आपकी बात बिलकुल सही है। मै धर्म-परायण पुरुष ही हूँ। धार्मिको को हमेशा अधर्म से भिडना पडता ही है। अधर्म हर अेक युग मे अपने लिअे कोअी अलग क्षेत्र पसद करता है। आज के युगमे अधर्म ने राज-नीति का क्षेत्र पसद किया है। अिसलिअे मै राजनीति मे दाखिल हो चुका हूँ।)

अब अिस के साथ अेक-दूसरा प्रसग याद आता है जो यहाँ कहना उचित है।

अेक दिन लोकमान्य के दोस्त और साथी उनके घर पर अिकट्ठा हुअे थे। किसीने यूँ ही पूछा, "बलवन्तरावजी, स्वराज होने पर आप किस महकमे के मिनिस्टर बनेंगे ?" लोकमान्य ने जवाब दिया, "स्व-राज्य मिलते ही मै राजनीति के गदे क्षेत्र से भाग जाअूँगा, और आराम से कही भी गणितविद्या का प्राध्यापक बनूँगा। मुझे थिअरी ऑफ नम्बर्स साख्यिकी-सशोधन करना है। राजनीति के जैसे गदे क्षेत्र का मुझे तनिक भी आकर्षण नही है। मै राजनीति मे आज अिसलिअे फँसा हूँ कि भारत-माता के कपाल पर स्वतत्रता का कुकुए-तिलक नही है।"

आज आप धर्म की चर्चा कर रहे है। धर्म-धर्म की तुलना कर रहे है। मै कहूँगा कि भगवान मनु ने धर्म की जो व्याख्या की है अिस से अधिक व्यापक और उदात्त व्याख्या हो नही सकती। उन्हो ने उदात्त भावना की व्याख्या करते हुअे दस सद्गुणो का उसमे सिर्फ जिक्र किया है और दशकम् धर्म-लक्षणम् कहा है। उस मे न कोअी व्यक्ति का नाम है, न किसी ग्रथ का, न किसी देश का या जमाने का। अिस से बढकर धर्म की सार्वभौम व्याख्या हो नही सकती।

मैने तो हमेशा माना है कि जो लोग अेक ही धर्म-सस्थापक, प्रॉफेट या नबी को मानकर चलते है, अेक ही ग्रथ का स्वीकार करते है और अेक ही उपासना-पद्धति का आग्रह रखते है वे अेक पथ है। पथसे धर्म व्यापक होता है। अिसलाम और विश्वासी-अीसाअी पथ मेरी दृष्टि से बहुत बडे प्रभावशाली पथ है, सम्प्रदाय अथवा मार्ग है। धर्म उन से व्यापक होता है। धर्न उन को, और औरो को भी अपने पेट मे ले सकता है। धर्म तो अीश्वर की ओर ले जानेवाले, सदाचार सिखानेवाले और विश्वकल्याण के लिअे प्रयत्न करनेवाले सब-के-सब ऋषि-मुनि, सन्त-महत, आचार्य और सत्पुरुष, प्रॉफेट-नबी याने अवतारी पुरुषो का स्वीकार करता है, अुन्नतिगामी सब ग्रथो का आदर के साथ स्वीकार करता है और उनमे से अपने उद्धार के लिअे जो लाभदायक हो उससे प्रेरणा भी लेता है।

धर्म—सच्चा, व्यापक, सार्वभौम और सार्वकालिक धर्म जानता है कि साधना अनेक तरह की होती है। अेक ही साधना सबके लिये अेक-सी अनुकूल नही होती। सब साधनो को अेक ही ढाँचे मे दबा देना योग्य नही होगा। आदमी यन्त्र की वस्तु थोडी ही है, जिसे ढाँचे मे जाय या साँचे मे डालकर गुडियो की तरह तैयार किया ?

धर्म-प्रवर्तक अपने-अपने जमाने के और देश के लोगो की खूबियाँ और कमियाँ जानकर धर्म को खास रूप देते है।

धर्म के अिस व्यापक स्वरूप को पहचानकर ही लोकमान्य ने हिन्दू धर्म की प्रख्यात व्याख्या बनायी थी।

प्रामाण्य बुद्धिर् वेदेषु साधनानां अनेकता।
अुपास्याना अनियमः हिन्दू-धर्मस्य लक्षणम्॥

हम सब वैदिक परम्परा के हैं। अिसवास्ते मूल स्रोत के प्रति हमारा आदर होना ही चाहिये। ओसाअी लोग भी यहूदी तौरात को (ओल्ड टेस्टमेट को) मानते हैं। और मुसलमान भी अब्रहाम के धर्म के प्रति अपना आदर दिखा करके ही आगे बढते है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि वेद से हमारा मतलब केवल अृग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से नही है अिन चार वेदो को और अुन के वेदागो को और अुपनिषद आदि प्रेरणा-ग्रन्थो को वेद ही कहते हैं। वेद से किसी ग्रन्थ का मतलब नही है। वेद है आध्यात्मिक ज्ञान। अैसा आध्यात्मिक ज्ञान देनेवाले सब ग्रन्थ हमारे लिये वे तुल्य ही है।

पूर्वपरम्परा—अृषि-मुनियो की परम्परा कबूल करके ही हम आगे बढ सकते हे। अिसलिगे लोकमान्य ने कहा है कि वेदो के प्रति आदर रहना ही चाहिये। अितना अेक सूत्र मान लिया फिर तो दूसरा कोअी बन्धन है नही। 'साधनाना अनेकता' अनेक तरह की साधनाअे हम

लोगो ने मञ्जूर की है। सबके प्रति हमारा ,अेकसा आदर है। अुनमे से जो साधना हमारे लिये खास अनुकूल हो अुसी के अनुसार हम चलेगे। जरूरत पडने पर अेक के पीछे अेक अथवा, अेक के साथ दूसरी, अैसी अनेक साधनाअे भी चलायेंगे।

जो छूट अथवा अिजाजत साधना के बारे मे है वह अुपास्यो के बारे मे भी है। शिवजी है, विष्णु है, अम्बा माता, भवानी देवी है, गणपति और सूर्य भी है। और अिनके असख्य रूप है। चाहे जिस रूप ो हम अुपास्य के तौर पर चला सकते है। अध्यात्म का ज्ञान देकर साधना के रास्ते ले जाने वाला गुरु भी अेक अुपास्य है। सिख और ओसाओ के बीच अितना साम्य है कि दोनो गुरु के द्वारा अीश्वर को पहचानने गे मानते है।

साधना और अुपास्य के बारे मे जो धर्म हमे बाँधता ही नही अुसे छोडकर दूसरे किसी पथ मे हम क्यो फॅस जायँ ? दूसरे पथ-वालो को हम पराये क्यो माने ? सब हमारे है, हम सबके है। यह हिंदु-भूमिका ही समन्वय की भूमिका है।

जैसे कि शकराचार्य के परात्पर गुरु गौडपादाचार्य ने कहा है "और लोग, दूसरे-दूसरे पथ आपस मे भले ही लडे, हम अेकता-वादी है। हमारा किसी से झगडा हो नही सकता।"

जिसे आज हम अपना दुश्मन मानते है वह भी हमारा भाओ ही है। अितना समझाने के लिये सस्कृत मे शत्रु के लिये अेक शब्द है सपत्न। सौतेला भाओ। सौतेले भाअिओ की माताअे भले अलग-अलग हो पिता तो अेक ही होते है। महाभारत का युद्ध क्या सिखाता है ? कौरव-पाडव थे तो चचेरे भाओ ही। आपस मे लडे। लडाओ के लिये भारत के सब लोगो को अुन्होने बुलाया और सारे क्षत्रिय कुल का सहार किया। जिन को मारा अुन्ही का अुन को श्राद्ध भी करना पडा। धर्म-

राज ने रोते हुअे श्री कृष्ण से कहा, "भगवान् यह विजय तो पराजय के जैसा ही मुझे लगता है।

'जयोऽपि अजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे।'

महाभारत के बाद हजार बरस तक हमारी जाति सिर अूँचा नही कर सकी। बाद मे बुद्ध भगवान और महावीर स्वामी आये और अुन्होने कहा वैर से वैर मिटता नही। वैर छोड देने से ही वैर शात होता है। यही सनातन धर्म है।

नहि वेरेण वेराणि समन्तीध कुदाचन।
अवेरेण च समन्ति अेस धम्मो सनतनो॥

बुद्ध भगवान के काल से राष्ट्र का अुत्थान हुआ। सम्राट अशोक ने बौद्धधर्म का सदेश पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-अुत्तर, दूर-दूर तक पहुँचाया। लेकिन हमारे लोग फिर आपस मे लडने लगे। गृहयुद्ध से भारत फिरसे गिरा। अितिहास अिसका साक्षी है।

जो लोग बौद्ध हुअे अुन्हे अपनाना हमारा धर्म था। हमने वैसा नही किया। आज जो तिब्बती लोग अपने धर्म की रक्षा के लिये शरणार्थी होकर भारत मे आ रहे है अुनको हमारी भारत सरकार मदद दे रही है सही, लेकिन जनता ने अुन्हे अभी अपनाया नही दीखता। हम अुनकी तिब्बती भाषा सीखे। अुन्हे हमारी हिन्दी सिखावे। तभी भाअीचारा बढेगा। यह समन्वयका काम है।

धर्म-धर्म के युद्ध कर के दुनिया मे शान्ति नही होगी।

अगर हमारे लोगो ने पराये धर्म का स्वीकार किया तो पराया धर्म हमारे लिये पराया नही रहा। जब मेरी लडकी किसी पराये आदमी से शादी करती है तब वह पराया आदमी मेरा पुत्रतुल्य दामाद बनता है।

अगर यहाँ के चन्द आदिवासी अीसाअी बन गये तो वे धर्मांतर

करने से कम भारतीय नही बनते। वे तो हमारे भाओी ही है। बम्बओी की ओर देखिये तीन-चार लाख हरिजन नवबौध बन गये। क्या अुन को आप पराये कहेगे ? भारत के ये लोग कभी मुसलमान हुअे, कभी ओीसाओी हुअे, अब बौद्ध बनने लगे है। सब को अगर हम पराये मानते जायँ तो हम कितने रहेगे और हमारा क्या होगा ?

अितिहास के भगवान ने हमारे धर्म-बन्धुओ मे दोष देखे। हमे सुधारने के लिये अनेक धर्म यहाँ ला बुलाये। आपस मे झगडा करने के लिये नही, किन्तु सर्व-धर्म-समन्वय सीखने के लिये।

बिहार की भूमि मे राजा जनक ने अेकतावादी अद्वैत वेदात का प्रचार किया। अुनके गुरु याज्ञवल्क्य ने जनक को वेदात सिखाते हुअे निर्भयता की दीक्षा दी। महावीर ने अहिंसा का सन्देश फैलाया और स्याद्वाद अथवा अनेकातवाद के द्वारा समन्वय का समर्थन किया। यहाँ के ही बुद्ध भगवान ने समझाया कि विजय मे से ही द्वेषभाव पैदा होता है। जिस का हमने पराजय किया अुस को नीद नही आती। वह तो वैरभाव बढाता है और अेकता टूट जाती है।

'जय वेर प्रसवति, दु ख शेते पराजितो।'

अिसलिये झगडा टालकर दोनो को सँभालनेवाले समन्वय को अपनाना चाहिये।

आज हमारा अिलेक्शनो का अनुभव क्या है ? महीने-दो महीने अिलेक्शन का जग हम लडते हैं, लेकिन अुसकी जलन और वैर और द्वेष चार-पाँच साल तक चलता है। समाज की अेकता टूटती है और देश कमजोर होता है। समन्वय के बिना देश मजबूत नही हो सकता। और समाज की अेकता के बिना देश को हम समृद्ध और समर्थ नही बना सकते। अगर हम अन्दरूनी भेद को सँभाल सके तो हम दुनिया की भी सेवा कर सकेंगे। हिन्दू सस्कृति समन्वयवादी है। आज हमारा भूदान-ग्रामदान भी समन्त्रयवृत्ति से ही सफल बना सकेंगे। ग्रामदान के

मानी क्या है ? गाँव के सब लोग अेक-दूसरे को अपनाकर अेक विशाल परिवार बनाने का प्रारम्भ करते है। धर्मभेद, जातिभेद आदि सर्ब भेदो को भूलकर या गौण बनाकर सारे गाँव को अेक परिवार बनाना, मजबूत बनाना, यही है ग्रामदान का अुद्देश्य। अैसी भारतीय अेकता दिखाकर लोकमान्य की आत्मा को सन्तुष्ट करना यही होगी सच्ची तिलक जयन्ती।

१५ अगस्त ६९६५

स्वराज्य के महर्षि

जिस जमाने मे लोकमान्य ने स्वराज्य के लिअे अेकाग्रनिष्ठा से काम किया वह जमाना कैसा था अिस के दो उदाहरण यहाँ देता हूँ।

हम महाराष्ट्र के किसी गाँव मे गये। वहाँ का अेक ग्राम-वृद्ध मिलने आया। अुसे बडा अभिमान था कि दुनिया की सब बाते वह जानता है। लोकमान्य तिलक का जिक्र सुनते ही अुत्तेजित होकर कहने लगा—

"अजी, लोकमान्य की विद्वत्ता का क्या कहे? गोरे लोगो की अग्रेजी भी वे आरपार जानते थे। अेक दिन हमारे यहाँ अेक गोरा कलेक्टर आया था। अुसी दिन अुसके पास विलायत से खत आया। बेचारा पढ नही सका। हमारे गाँव मे अग्रेजी जाननेवाला दूसरा कोअी था नही। कलेक्टर ने बडी कोशिश की। पता चला कि लोकमान्य तिलक यहाँ है। आजीजीपूर्वक लोकमान्य को बुलाया और मदद माँगी। लोकमान्य ने बिलकुल आसानी से सारा खत शुरू से आखिरतक पढ सुनाया। अितना ही नही खतका जवाब भी फौरन तैयार करके दिया। अैसे विद्वान थे हमारे लोकमान्य। गणेशजी के अवतार ही थे वे।"

अेक दूसरा किस्सा भी यही पर देता हूँ हम दक्षिण महाराष्ट्र के अेक अच्छे शहर मे गये थे। वहाँ के नेता ने बातचीत के सिलसिले मे कहा "आप के लोकमान्य बहुत अच्छे है। लेकिन उन्हे व्यवहार का ज्ञान कम है। राजनीति मे बह जाते है।

"हम राजनीति के खिलाफ नही है। राजनीति भी थोडे प्रमाण मे जरूरी है। आपके लोकमान्य अगर आगे की और पीछे की बात सोचकर राजनीति करते तो कब के हाअी कोर्ट जज हो जाते। अति राज-

नीति चलाकर उन्होने सब कुछ खोया। अब अंग्रेज उनका नाम तक नही लेते हैं। आखिर मे क्या पाया उन्होने ?"

देश मे जागृति बहुत कम थी। जो विद्वान थे, अंग्रेजी मे ही अपना सब काम करते थे। जन-जागृति का आदोलन भी अकसर अंग्रेजी मे ही चलता था। सन् १८५७ मे जो 'सिपाहियो का गदर' हुआ उस का स्वरूप आज भी बहुत कम लोग जानते है। कअी राजा लोग प्रगट रूप से अंग्रेजो के साथ दोस्ती रखते थे और गुप्त ढग से सिपाहियो को प्रोत्साहन और मदद देते थे। अुन दिनो अंग्रेजो की लश्करी-शक्ति हम से ज्यादा नही थी। लडाअियो मे हम अंग्रेजो को हरा सकते थे। लेकिन उन की सगठन-शक्ति हम से कअी गुना अच्छी थी। सामान्य लोगो मे परिस्थिति का पूरा ज्ञान नही था। और नेताओ मे अेक-राष्ट्रीयता का चारित्र्य ढीला था। फौज ने विजय प्राप्त की अुस से लाभ उठाकर स्वराज्य को मजबूत करने की दृष्टि और नीति नेताओ मे नही थी।

अिस तरह की हमारी आतरिक कमजोरी को पहचानकर अंग्रेज लोग सत्तावन के राष्ट्रीय प्रयत्न को दबा सके और 'सिपाहियो का गदर' कहकर अुस की अवहेलना भी कर सके। सत्तावन के उस प्रयत्न मे हिंदू-मुस्लिम अेक हो सके थे अिस से अंग्रेजो ने बोध लिया और अपनी पुरानी नीति—मुसलमानो को दबाने की और हिंदुओ को चढानेकी, बदलकर बराबर उल्टी नीति उन्होने चलायी। सत्तावन के बाद भारतीयो की जागृति देखकर मुसलमानो को उन्हो ने अपनाना शुरू किया और नयी भेदनीति चलायी।

अंग्रेजी शिक्षा का लाभ देखकर हिंदुओ ने पूरी निष्ठा से अंग्रेजी विद्या की उपासना की, अच्छी-अच्छी नौकरियाँ पायी और स्वराज्य खोने का असतोष वे भूल गये।

अैसे वायुमंडल मे लोगो की भाषा के द्वारा लोक-जागृति का काम जिन लोगो ने किया उनमे बालगगाधर तिलक अग्रगण्य थे उन्हो ने

अंग्रेजो के प्रति असतोष ओर अविश्वास पैदा करने का काम अेकाग्रता से चलाया और आत्मविश्वास खोये हुअे राष्ट्र मे अपनी सरकृति के प्रति गौरव रखने की दीक्षा भी दी । जो लोग अंग्रेजी राज्य से होनेवाले लाभ के लोभ मे फँसे हुअे थे उन का विरोध करना तिलक का स्वभाव ही हो गया । विदेशी सरकार के साथ सहयोग करनेवाले लोगो की प्रतिष्ठा तोडना लोकमान्य का अेक प्रधान कार्य था । हारा हुआ देश आत्मविश्वास भी खो बैठता है । उप आत्मविश्वास को सभालने के लिअे जो भी बन सका लोकमान्यने किया ।

लोकमान्य तिलक अच्छे अखबार-नवीस थे । लेखक और व्याख्याता अुत्तम थे । विद्वान तो थे ही । लेकिन अपनी सारी शक्ति उन्हो ने अंग्रेजी राज्य को कमजोर करने मे और राष्ट्र मे आत्मविश्वास बढाने मे लगा दी । अिसीलिअे अेक विख्यात अंग्रेज लेखक ने तिलक को Father of Indian Unrest कहा था । दुश्मन से मिला हुआ यह यथार्थ अिलकाब ही था ।

लोकमान्य तिलकजी का प्रभाव देखकर अंग्रेजो ने उन्हे दो बार जेल की सज़ा दी । पहले डेढ साल की और दूसरी दफा छ साल की । कारावास के फलस्वरूप लौकमान्य की प्रतिष्ठा अत्यत बढी । लोकमान्य कॉंग्रेस का महत्त्व जानते थे । काग्रेस ने उन के पक्ष को कोंग्रेस के बाहर कर दिया था । छ साल की जेल के बाद लोकमान्य ने कोंग्रेस के अदर प्रवेश करने की कोशिश की । और सब शर्ते मजूर करके वे कोंग्रेस में घुसे । वे जानते थे कि कोंग्रेस मे प्रवेश करने के बाद अुन्ही का नेतृत्व वहाँ कायम होनेवाला है ।

अिधर गोखलेजी के शिष्य बैरिस्टर गाधी दक्षिण आफ्रिका मे सत्याग्रह के द्वारा विजय पाकर भारत लौटे थे । अुन्हो ने भी कोंग्रेस मे प्रवेश पाया । गाधीजी थे तो गोखलेजी के भक्त । लेकिन अुन की क्रातिकारी राष्ट्रभक्ति और भारतनिष्ठा किसी से कम नही थी । लोक-

मान्य समझ गये थे कि "यह नया आदमी हमारा नही है। हमारा हो नही सकता, लेकिन अिस के द्वारा भारत की असेवा होनेवाली नही है। अिसलिअे अिस का कही भी विरोध न करते हुअे जहाॅ हो सके, अिस का समर्थन ही करना चाहिअे।"

कोग्रेस मे लोकमान्य का और महात्माजी का विरोध भी हो सकता था और सहयोग भी। दोनो अेक दूसरे की योग्यता पहचानते थे। अपनी-अपनी नीति पर दृढ थे। अिन के अदरूनी मतभेद के कारण कोग्रेस कमजोर होने का डर था। लोकमान्य अिस नयी शक्ति को पहचान गये। अुस की कदर भी करने लगे। गाधीजी को कहते थे। "भले आदमी, अभी अग्रेजो पर विश्वास रखते हो ? मैने भी अग्रेजो से सहयोग करने का प्रयत्न कर देखा था। अिस मे मेरी अगुलियाॅ जल गयी। जब तुम्हे मेरे जैसा अनुभव होगा तब मुझसे दसगुनी बगावत करोगे। अग्रेज सकट मे फँसे हुअे है अुनसे बाकायदा स्वराज्य का वचन लिअे बिना अुन्हे हम युद्ध मे मदद नही कर सकते।"

गाधीजी जानते थे कि हमारे सहयोग के बिना भी अग्रेजो को जागतिक युद्ध के लियेमे मनुष्यबल और द्रव्यबल मिल रहा है। हम अपनी ओर से सहायता करने के पहले ही स्वराज्य का वचन माॅगेगे तो अुस माँग के पीछे हमारा कोअी खास बल तो नही। अैसी हालत मे अग्रेजो पर विश्वास रखकर बिना किसी शर्त के हम अुन को मदद करे और युद्ध के अन्त मे हमारी दी हुअी सहायता के बल पर जोरो से स्वराज्य की माॅग करे। न मिला तो सत्याग्रह करने का हमारा रास्ता खुला है ही।

जो हो सन १९२० के अगस्त के प्रारम्भ मे लोकमान्य तिलक का देहान्त हुआ। और स्वराज्य-साधना के लोकमान्य के मिशन के अेकमात्र अुत्तराधिकारी महात्माजी बने। अुस दिन से गाधीजी ने लोकमान्य और स्वराज्य दोनो शब्द जोड दिये। मै नही मानता कि लोकमान्य का अिस से बढकर कोअी अच्छा श्राद्ध हो सकता था।

लोकमान्य के स्वर्गवास के बाद तीस साल के अन्दर ही भारत स्वतन्त्र हो गया और लोकमान्य का जीवन सफल हुआ। अुन के समकालीनो ने अुन्हे लोकमान्य कहा। अंग्रेजो ने अुन्हे असतोष के जनक कहा। आज हम लोकमान्य को स्वराज्य के महर्षि कह सकते है। जब तक भारत जीवित है तब तक स्वराज्य के महर्षि लोकमान्य तिलक को वह श्रद्धाजलि अर्पित करता ही रहेगा।

९-८-१९६६

—※—

रवीन्द्रवाणी का चिरंतन संदेश

आज की पीढी कविवर रवीद्रनाथ की जन्म-शताब्दी, अुत्सव के आनन्द से और कृतज्ञता-बुद्धि से मना सकती है। लेकिन जिन्हो ने कवीन्द्र को प्रत्यक्ष देखा था, अुन की प्राण-प्रिय सस्था मे रहकर अुन का दैवी सगीत सुना था, अुन को अपने नाटक लिखते ही साथियो और विद्यार्थियो को पूरे अुत्साह के साथ पढ सुनाते देखा था और अुन के साथ देश के अनेकानेक महत्त्व के सवालो की चर्चा करने का सद्भाग्य जिन को मिला था अुन के मन को आज के आनद-अुत्सव मे शरीक होते विषाद की अेक छटा छू जायेगी ही।

योरप का महायुद्ध शुरू हुआ अुस अरसे मे (सन् १९१४) मैने शान्तिनिकेतन मे जो पॉच-छ महीने बिताये थे और शान्तिनिकेतन के गुरुदेव का जो सहवास पाया था, अुसके मीठे सस्मरण आज अेकदम ताजे होते है। अुस के बाद बीच-बीच मे अुन से कअी दफा मिला हूँ। अुन को आखिर मे सन् १९३७ मे कलकत्ता मे मिला था। अुस वक्त वहॉ दुनिया के सभी धर्मो की अेक अन्तरराष्ट्रीय परिषद हुअी थी। अुस मे अेक दिन मैं अध्यक्ष था और दूसरे दिन गुरुदेव अध्यक्ष थे। अुन के अुस समय के दर्शन से भी मुझे कुछ दु ख ही हुआ था क्योकि वृद्धावस्था के कारण अुन की शरीरयष्टि कुछ झुक सी गअी थी और अुन की आँखो की विश्व-मोहक रोशनी कुछ झॉकी पड गअी थी।

अष्ट-पहलू प्रतिभा के अिस विश्वकवि के जीवन-पहलू भी बहुत थे। लेकिन अुन की विभूति मुख्यत और सार्वभौम रूप मे कवि की ही थी। शिक्षा-शास्त्री, देशभक्त, मौलिक चिन्तक, समाज सेवक और मानवता के अुपासक के तौर पर अुन्हो ने भले खूब ख्याति प्राप्त की हो, लेकिन अुनकी काव्य-प्रतिभा के सामने बाकी सब श्रेष्ठ बाते भी गौण हो जाती है।

महाकवियो की श्रेणी मे भी वे अपना निराला व्यक्तित्व रखते थे। कअी अेक कवियो की कविता-समृद्धि से, अुनकी कल्पना की अुडान से और विचार-गौरव से हम चकाचौध हो जाते हे। लेकिन अैसे कवि कभी-कभी मानो हम से कहते है कि हमारी कविता की भव्यता देख कर हमारे जीवन मे भी अैसी भव्यता की अपेक्षा आप न कीजियेगा। हमे भी आश्चर्य होता है कि अैसी लोकोत्तर प्रतिभा का अुगम-स्थान रूपी कवि का जीवन अितना मामूली और पामर क्यो ? जिन लोगो का जीवन अुन की कविता के योग्य होता है अैसे कवियो को मै ने देखा है लेकिन वे अिने-गिने ही है। अिस तरह रवीन्द्र नाथ का विचार करने पर श्री अरविन्द घोषका स्मरण स्वाभाविक हो आता है। लेकिन अरविन्द घोष की महत्ता कवि के तौर पर है अुस की अपेक्षा तत्त्वचिन्तक और महा-योगी के तौर पर अधिक है। रवीन्द्रनाथ तो नखशिखात मन, वाणी और कर्म से कवि ही है—क्रान्तदर्शी कवि है। अुन की अुज्ज्वल देश-भक्ति भी अुन की काव्य-प्रतिभा मे से ही पैदा हुअी हम देख सकते है। अुन का तत्त्व-चिन्तन भी, अुन को कवि के तौर पर अपने जीवन मे जो जो सामजस्य और समन्वय के तत्त्व मिले थे, अुन मे से ही खिला था। अुन्हो ने शिक्षाक्षेत्र मे जो नये विचार दिये और सुन्दर-से-सुन्दर प्रयोग कर दिखाये वे भी कवि के तौर पर अुन के जीवन के आकलन से स्फुरे थे। बाल मानस का आकलन और सामाजिक जीवन मे सस्कारो का महत्त्व समझे हुअे होने के कारण ही वे शिक्षा के नये-नये प्रयोग कर सके।

सच्चे कवियो की प्रतिभा की खूबी यही होती है कि वे समस्त जीवन का सम्पूर्ण आकलन कर सकते है। और वह भी जीवनानुभव से सीधे-सीधा लिया हुआ होता है। रविबाबू अपनी अिस कवि-प्रतिभा के कारण ही अुपनिषद के महान अृषियो के वचनो का गर्भितार्थ हमे अितनी अच्छी तरह समझा सके और भगवान बुद्ध या पारसिओ के धर्मगुरु भगवान जरदुष्ट्रकी वाणी का मर्म दुनिया के सामने रख सके।

हमारे अेक देशबाधब ने आयर्लैण्ड के विख्यात कवि यीट्स से रवीन्द्रनाथ के बारे मे बातचीत करते, अुन की खासियत अेक ही वाक्य मे प्रकट की थी "हमारे देश के सन्तो मे रवीन्द्रनाथ ही अेक अैसे थे जिन्हो ने जीवन के प्रति अुदासीनता नही दिखायी, अुन का जीवन-दर्शन जीवन-विमुख न था।" प्रेम और आनन्दमय जीवन के यह कवि दुनिया से अुद्विग्न होकर अेकान्तसेवी तपस्वी का जीवन क्यो पसन्द करते? अुन का जीवन अितना अनुभव-समृद्ध और कल्पना-गहन था कि वैराग्य अुस मे प्रवेश ही नही कर सकता था। अुन्हो ने साफ-साफ कहा है—

वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नोय।

महाकवि व्यास के वचन को रविबाबू ने अपना जीवन-मत्र बना लिया था—

धर्मार्थकामाः समम् अेव सेव्या—सामाजिक जीवन की सुस्थिति के लिअे धर्म, जीवन-समृद्धि के लिअे अर्थ, और अतर्बाह्य प्रकृति की सुन्दरता महसूस करनेके लिअे **काम**—तीनो पुरुपार्थो के बीच सप्रमाण सामजस्य होना चाहिये।

य अेक-सेवी स नरो जघन्यः—अिन तीनो पुरुषार्थो मे से अेक ही के पीछे जो पडता है और अन्य दो की जो अुपेक्षा करता है वह सचमुच पामर है।

हमारे पुराने तत्त्वज्ञानी और योगीश्वर कहते थे कि यह दुनिया निःसार माया है। अुसमे से निकल जाना, अुस का त्याग करना यही तत्त्व-प्राप्ति के लिअे सच्ची साधना है। शान्ति का यही रास्ता है। लेकिन बाद के तत्त्वचिन्तको ने यह अेकान्तिक भूमिका छोड दी। वे अिस निर्णय पर आये कि योग्य, सयमित साधना के द्वारा जीवन के सब पुरुषार्थो के अन्दर समतुला सँभालना हो तो भोग और त्यागका समन्वय साधा जा सकता है और पूर्ण साक्षात्कार तो अुसके जरिये ही हो सकता है—**भुक्ति मुक्ति च विदति।**

हम देखते है कि रवीन्द्रनाथ भारतीय तत्त्वज्ञान की सर्व-समन्वय कारी लेकिन अलिप्त साधना मे माननेवाली आर्य जीवन-दृष्टि के श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे।

जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्र और पहलुओ मे समन्वय साधने की और समतुला लाने की अपनी शक्ति के कारण ही रवीन्द्रनाथ समग्र जीवन के सर्वांग सुन्दर कवि बने थे। रवीन्द्रनाथ बहिष्कार के नही लेकिन सर्व-स्वीकार के कवि तथा तत्त्वज्ञानी थे। अुन्हो ने किसी चीज का अिन्कार या बहिष्कार किया हो तो वह बहिष्कार का ही। जीवन मे जो कुछ विश्री हो, बेसूरा हो और प्रमाण बाहर का हो अुसी का अुन्होने बहिष्कार किया है।

पूरी-पूरी श्रद्धा और आस्तिकता से समग्र जीवन का स्वीकार करना—यही, मै मानता हूँ कि, भारतीय साहित्य-राशि के लिअे रवीन्द्रनाथ की कायमी देन है। और भारतीय साहित्य को प्राप्त अुन की यह देन भारत के द्वारा सारे विश्व तक पहुँचेगी।

भारतीय सस्कृति की यह सुन्दरता और भव्यता है कि प्राचीन काल से हमारे अृषि-मुनिओ ने, समाजहित-चिन्तको ने तथा तत्त्व-दर्शियो ने अिस समन्वय वृत्ति की। साधना की और वे सृष्टि के कण-कण मे, जर्रे-जर्रे मे परमात्मा को देखने लगे। हमारी अीश्वर विषयक कल्पना भी कितनी भव्य है! यहूदी या ख्रिस्ती समाज के साथ खास कौल-करार करके अपने को 'अमुक जमात का भगवान' बनाने वाला हमारा भगवान नही है। अपने सार्वभौमत्व और अद्वितीयत्व को कबूल न करने वाले लोगो की अीर्षा करके अुन को नरक मे धकेल देनेवाला और अपनी सत्ता के सामने सिर न झुकानेवाले मानव को दारुण सजा देनेवाला भी हमारा भगवान नही है। हमारा भगवान सर्वेश्वर है। वह किसी का त्याग नही करता। **कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा अकर्तुम्'** सर्वशक्तिमान होने पर भी हमारे भगवान के पास धीरज पूर्वक सब सहन करने की शक्ति है। वह सर्वसह

है । प्रमादी आदमी चाहे अुतने गुन्हा करे फिर भी वह आखिर सुधरने ही वाला है अैसा विश्वास रखकर सभी के प्रति प्रेम रखने वाला सर्वप्रेमी अीश्वर ही हमारा अीश्वर है । यही वजह है कि हमारे अृषि-मुनि, तत्त्व दर्शी और कवि सृष्टि का रहस्य पहचान सके और अपना जीवन शान्त समृद्ध और धैर्यशाली बना सके । चाहे अुतने सकट आने पर और मति विचलित हो जाने पर भी हमारे सस्कृति-धुरीण अकुलाते या अस्वस्थ-बेचैन नही होते । अथवा मगल के प्रति अपनी दृष्टि खो नही बैठते । अिस सर्व-समन्वयकारी सार्वभौम तत्त्व का रवीन्द्र नाथ ने जो साक्षात्कार किया वही भारतीय साहित्य के लिअे अुसकी अुत्तम देन है ।

हमारी संस्कृति का और अेक तत्त्व है । अुस पर जितना भी जोर दिया जाय, कम ही है । हमने कभी यह दावा नही किया कि "सच्चा नबी या पैगम्बर तो अेक ही हुआ है, जो हमारा नबी है । हमारे धर्म के सिद्धात और तत्त्व किसी दूसरे धर्म मे नही है ।" अिस तरह लोकोत्तरता का दावा करना शिष्टाचार का भग है, अितना ही नही तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अुसमे बडी कमजोरी रही है । जो किसी के पास नही है, केवल मेरे पास ही है, अुसी मे सयानापन है, सच्चा धर्म है और यही सच्चा तत्त्व है अुस का क्या यकीन ? पागल आदमी भी कह सकता है, मेरे जैसी अनुभूति और किसी के पास नही है ।' सभी धर्मों का आधार अुन को हुअे साक्षात्कार पर होता है । अब जो-जो साक्षात्कार सच्चे है, अीश्वर की ओर से बख्शे हुअे है अुनमे असत्य या अेकागिता हो ही नही सकती । अीश्वरी प्रेरणा तो परम-सत्य और कल्याणकारी ही हो सकती है । भेद पैदा होता है साक्षात्कार का स्वीकार करनेवाले की त्रुटि के कारण । लेनेवाला, याद रखनेवाला और दूसरो के आगे प्रकट करनेवाला—तीनो के दोष अुस साक्षात्कार मे मिलेगे ही । आसमान से बरसनेवाला पानी स्वच्छ होता है । जमीन तक पहुँचते ही वह अुस-अुस भूमि की मिट्टी के रग, स्वाद आदि ले लेता है । अुसी तरह सब धर्मों मे अीश्वरी प्रेरणा का अश अेकसमान रूप का होता है । फिर अुस प्रेरणा का स्वीकार करनेवाले

लोग अपनी समझ, अपने रागद्वेष और अपनी परिस्थिति के मुताबिक अुसमे अपनी ओर से जामन डालते है । यह दोष तो सभी धर्मों मे होता है । अत अेक ही धर्म सच्चा और बाकी के सब गलतियो से भरे हुअे है अैसा नही कहा जा सकता ।

पौधे पर लगी हुअी क ली धीरे-धीरे फूलती है, विकसित होती है लेकिन शुरू मे, बीच मे या पूर्ण विकसित रूप मे, अुसका विकास अेकागी नही होता । अेक पखुडी पहले खिली दूसरी बाद मे अैसा नही होता । कली भी अपनी जगह पर सम्पूर्ण है, अर्ध विकसित दशा मे भी फूल तो सम्पूर्ण फूल ही होता है । और पूरा खिलता है तब भी अुस की ताजगी, अुसका लावण्य, अुसका स्पर्श और सुगन्ध सब कुछ सप्रणाम एक साथ खिलता है । फूल का विकास अपूर्णतामे से पूर्णता, अेकागिता मे से सर्वागिता अिस तरह नही होता । लेकिन पूर्णता मे से ही पूर्णता खिलती है । सब धर्मो मे रही हुअी अीश्वरी प्रेरणा का भी अैसा ही होता है ।

हमारे श्रेष्ठ पुरुप, मनीषी और चिन्तनवीर जब-जब सृष्टि के रहस्य का चिन्तन करने बैठे, जीवन का रहस्य ढूँढने बैठे, तब-तब अुन्हो ने देखा कि रोज नये-नये ढग से खिलनेवाली अनन्त विविधता मे अखण्ड अेकता रही हुअी ही है । हरअेक क्षण यह प्रसन्न अेकता प्रस्फुरित होती नजर आती है । अत अेक मत्र के द्वारा यह अनुभूति अुन्हो ने व्यक्त की **अेकम् सत्; विप्रा बहुधा वदन्ति ।**

आखिर सत् तत्त्व तो अेक ही है । सयाने लोग भले अुस का वर्णन अपने-अपने अनुभव के मुताबिक अलग-अलग ढग से करे । घबडाअी हुअी दुनिया को अुन्हो ने कहा कि अनुभव की वाणी मे भी विविधता देखकर अकुलाने का कारण नही है । सर्वेश्वर की, परब्रह्म की माया, अुस की अद्भुत शक्ति ही अिस तरह प्रकट होती है । यह विविधता हमे भुलावे मे डालने के लिअे नही है, हमे बेचैन करने के लिअे नही है,

लेकिन सर्व-समन्वयकारी समृद्ध अेकता की तरफ ले जाने के लिअे है। अिस अेकता की समझ पडने के बाद हम सब सघर्ष को आस्ते-आस्ते दूर कर सकेगे और सर्व-समन्वयकारी दृष्टि का स्वीकार करेगे। हमारे प्राचीन कवियो ने कुदरत से ही अुपमा लेकर कहा है कि जिस तरह नदियाँ अलग-अलग पहाडो से प्रकट होकर अनेक प्रदेशो मे से, टेढे-मेढे रास्तो से आगे बढती है, और बीच मे मनुष्यो को और पशु-पक्षिओ को अपनी समृद्धि मे से पोषण देती है, अपनी पीठ पर दुनिया का कच्चा माल और कारीगरी से लदी हुअी नावो को ले जाती है और आखिर मे ये सब नदियाँ अेक विशाल महासागर मे विलीन हो जाती है, और अिस तरह अपने जीवन- प्रवाह को कृतार्थ करती है, अुसी तरह भिन्न-भिन्न धर्म के साक्षात्कार हमे विश्वात्मा का साक्षात्कार कराते है और सर्व-धर्म-समभाव के सागर मे पहुँचा देते है।

सब धर्मो और वादो मे से अिस अेकता का सार्वभौम तत्त्व पाकर ही भारतीय सस्कृति अितनी विविधरूप और सर्व-समन्वयकारी बनी है। भारत मे आअिन्दा जो सस्कृति विकसित होगी वह विश्वतोमुखी और सर्व-समन्वयकारी ही होगी। भारत की अिस भावी सस्कृति का साक्षात्कार कर सकने से ही रवीन्द्रनाथ ने अैसे गीत गाये है कि अुन का सन्देश सभी देशो के, सभी धर्मो के और सस्कृतियो के अुपासको को अपनाने योग्य मालूम हुआ है।

सत्य की सनातन खोज हमे अनेक दिशाओ मे ले जाती है। पश्चिमी के पिछली अेक-दो शताब्दिओ के पश्चिमी के विज्ञानवेत्ताओ को प्रसन्नता से निसर्ग का निरीक्षण और चिन्तन कर के सन्तोष नही हुआ। अुन्हो ने कुदरत पर भट्ठी, छुरी और तेजाब के प्रयोगो से अत्याचार कर के अुस के पास से अुस के रहस्य का अिकरारनामा पाने की कोशिश की। वे किसी हद तक सफल भी हुअे। लेकिन अत्याचार का शाप अुन के सिर पर रहा। चुनाचे वे कुदरत के परम-रहस्य तक पहुँच नही पाये। जब अुन्होने अपने साधन शुद्ध किये और सूक्ष्म साधना द्वारा अपनी बुद्धि शुद्ध और तेज बनाअी तभी जाकर अुन की आकलन-शक्ति बढी, कल्पना-शक्ति

खिली, और अुस के बाद ही सृष्टि के परम रहस्य की झाँकी वे कर सके। विज्ञान का प्रारम्भ अेक तरह से अनघड था अैसा ही कहना होगा।

विज्ञानशास्त्री की पद्धति अलग होती है और 'अपने बालक के हृदय मे क्या चल रहा है यह जान लेने की कोशिश करनेवाली माता' की पद्धति अलग होती है। माता अपने बालक को सवाल पूछ-पूछकर हैरान नही करती। अदालत की तरह जिरह पर जिरह नही करती। माता बालक पर अैसा कुछ प्रेम बरसाती है कि अपने अन्तर की बाते माँ के आगे प्रकट किये बिना बालक से रहा ही नही जाता। माता और बालक दोनो के हृदय के तार अेक हो जाते है। अेक के हृदय मे जो स्फुरण होता है अुसका प्रतिसाद दूसरी ओर आप ही आप झन-झना अुठता है। ' विज्ञानवेत्ताओ की स्थूल पद्धति को हमने नाम दिया है प्रयोग प्रक्रिया। प्रेममयी माता की आत्मीयता की पद्धति को कह सकते है योग।

योग का अर्थ ही है जोड, अेकता और समरसता। अैसा प्रेमयोग सच्चे कवि के लिअे सहज होता है। प्रेम की सहानुभूति से, अुत्कट ध्यान की आत्मीयता से कवि का हृदय अितना कुछ सूक्ष्मवेदी बनाता है कि अुसे सत्य खोजने जाना नही पडता। सत्य आप ही आप पुरजोश से अुसकी ओर दौडता आता है, बाढकी तरह आ धमकता है। **'तस्य अेष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।'**

अुपनिषत् काल के अेक अृषि ने अनुभूति का रहस्य पेश करते हुअे कहा है कि तत्त्वदर्शन तो हृदय से ही प्राप्त होता है—**हृदयेन हि सत्यं जानाति।**

अुपनिषत् साहित्य के, किन्तु कुछ बाद के अेक अृषि ने कहा कि धर्मशास्त्र तो अृषियो के अन्त करण के अनुभव के निचोड के रूप मे अिकट्ठा होता है—**धर्मशास्त्रं महर्षीणाम् अन्तःकरण-संभृतम्।**

दुनिया के प्रचलित सभी धर्मो का प्रयत्न व्यक्ति के तथा समाज के जीवन मे अेक सार्वभौम व्यवस्था लाने का होता है। अिस प्रकार की जो-जो अनेक सार्वभौम समन्वित व्यवस्थाअे देश मे प्रचलित थी अुन सब को अेकत्र लाकर अुन विविध समन्वयो मे से सार्वभौम महद्-समन्वय ढूँढ निकालने का काम हिन्दुस्तान के कविओ और मनीषिओ के हिस्से आया। रवीन्द्रनाथ ने अुपनिषत्काल से चले आते महद्-समन्वय से प्रेरणा पाकर जो हृदय विकसित किया अुसमे अुन्हो ने दुनिया की समस्त सस्कृतियो का रहस्य ढूँढ निकाला और अुस वस्तु को बाद मे, कवि को ही सूझ सके अैसी वाणी मे और रागो मे, दुनिया के आगे गा बताया है। रवीन्द्रनाथ की अिस जीवन-दृष्टि का प्रभाव आज की दुनिया पर और अुस के गहरे चिन्तन पर स्पष्ट दिखाअी देता है।

रबिबाबू ने अपनी बुनियादी शिक्षा प्रकृति के विविध निरीक्षण और चिन्तन मे से प्राप्त की थी सही, लेकिन अिस के अतिरिक्त अुन की दूसरी शिक्षा अुन्हे अुन के चिन्तन-परायण महर्षि पिताश्री के सहवास मे से मिली। महर्षि ने ध्यान द्वारा जो देखा और पाया अुसी का विस्तार और प्रचार अुन के प्रतिभाशाली लड़के ने किया। भारतवर्ष के आज के चिन्तन पर यह भी रवीन्द्रनाथ का अेक कायमी असर है।

हमारे देश का यह भारत नाम भी हमारी अुभरती आध्यात्मिक अनुभूति की समृद्धि को सूचित करता है—**भरणात् भरतः; भरणात् भारतः।**

अिस देश मे समय-समय पर अेक के-बाद-अेक अनेक विजेता आये। प्रजा को अुनके हाथो बहुत सहना पडा। हमारे देश का अितिहास अिस रूप मे किसने नही पढा? हमारी अपेक्षा विदेश के लोग ही यह अितिहास ज्यादा जानते है। अितिहास की घटनाओ की छानबीन करना और अुस का अन्वयार्थ समझाना विदेशी लोग अच्छी तरह जानते हैं। लेकिन पूरे अितिहास का अन्तिम रहस्य और आखिरी प्रयोजन समझकर अुसे मगलमयी वाणी मे व्यक्त करने का काम तो हमारे रवीन्द्रनाथ ने ही किया।

अुन्हो ने जाहिर किया कि भारत अेक पुण्यतीर्थ है जहाँ महा-मानव-सागर के किनारे सभी वश के लोग अिकट्ठा होगे, अपना-अपना करभार लायेंगे और अन्त मे सर्वोदय का मगल अभिषेक जीवन देवता को सर्व-समन्वयकारी जल से करेंगे। अिस देश मे लुटेरे के तौरपर व विजेता के तौरपर कौन-कौन आये और आखिर किस तरह यही के होकर रहे और अुन्हो ने अेक विराट सस्कृति मे अपना हिस्सा किस तरह समर्पित किया अुस की वात कहकर अिस अभिषेक के महोत्सव मे शरीक होने के लिअे वे सब को निमत्रण देते हैं। यह निमत्रण सब के लिअे बिना किसी शर्त का है। अिस समन्वय मे सब से पहले अपना घडा ले आनेवाले ब्राह्मण को निमत्रण देते हुअे कवि सिर्फ अेक तीखी तमतमाती सूचना करते है।

अेशो अे ब्राह्मण शुचि करि मन

ज्ञान और तपस्या के अभिमान से फूले हुअे हे ब्राह्मण ! अपना मन शुद्ध कर के ही आना। अपना मैल निकालकर आना और वह मैल कौन सा था ? अपना जीवन निर्मल, शुचि और पवित्र बनाने की धुन मे अुस ने बहिष्कार का तत्त्व अपनाया। अपने-आप को सब से अलग किया। और सर्वस्वी-कार की विश्व-व्यवस्था का द्रोह किया। अिस द्रोह के कारण अुस को खूब प्रायश्चित्त करना पडा है। दुनिया मे गलतफहमी, अपमान और पराजय अुसे सदियो तक सहन करने पडे है। अिस अनुभव से बोध ले कर जब ब्राह्मण नम्र बनेगा, शुचि बनेगा तभी अुसे मानवता के महोत्सव का निमत्रण मिलेगा।

योरप के और अमेरिका के गोरे आज अपने-आप को ब्राह्मण मानते है। अुन को भी कवि की यही तीखी सूचना लागू पडती है कि अुनको अपना वर्णाभिमान, वाशिक महत्ता और सामर्थ्य का मद अुतार फेंककर ही विश्वसेवा के अिस मगल कार्य मे शामिल होना चाहिअे।

अीश्वर के दिअे हुअे दीर्घ आयुष्य मे बचपन से ही रवीन्द्रनाथ ने यह संदेश बिना रुके, बिना थके सुनाया। और अुन का कितना सद्भाग्य

कि भारतवर्ष का यह सर्व-कल्याणकारी सर्वोदयी सदेश राजनीतिक क्राति के द्वारा सामाजिक नवरचना द्वारा और सास्कृतिक समन्वय के द्वारा गाधी-नेहरू जैसे लोगो के हाथो अमल मे आता वे देख सके ! साम्राज्य-मद का, वर्ण-विद्वेष का और हर तरह की अलगता का पराभव होता अुन्होने देखा और विश्व-वसत की आगमनी भी अुन्होने सुनी और सुनाअी ।

सचमुच, रवीन्द्रनाथ अिस युग की अद्‌भुत प्रेरणा के गायक थे । अुनका असर विश्व मे दीर्घकाल तक फैलेगा ।

कवीन्द्र का जीवन-दर्शन

कवि के जीवन के पहलू कितने भी हो, उनका प्रधान पहलू तो काव्यमय प्रतिभा का ही होता है। प्रतिभावान कवि के रसो मे विविधता तो होगी ही। कवि यानी कल्पना-प्रवीण प्राणी। प्रेरणा देना ही उस का मुख्य काम है। कवि अगरनियमन मानता है तो सिर्फ कविता के छन्दका और औचित्य का। उस को सँभालकर कवि हर वक्त अलग-अलग भूमिका धारण कर सकता है। उपन्यास अथवा नाटक लिखते समय तरह-तरह के पात्रो की भूमिका के साथ कवि को तन्मय होना पडता है। अरे! भाषा और शैली मे भी परिवर्तन करना पडता है। सीधे, भोले और ऊर्मिवश मनुष्य की भाषा अलग और वहमी, चतुर या कीनावर राजद्वारी मुत्सद्दी की भाषा अलग। कवि को polypsychologist हुए बिना चारा ही नही है। हरएक मानव के हृदय मे पहुँचकर, उसके मानस के साथ तन्मय होने की शक्ति जिसकी हो उसे 'पॉलिसायकोलॉजिस्ट' कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध साहित्य-स्वामी रोमाँ-रोलाँ ने गाधीजा के बारे मे किया है।

ऐसी हालत मे कवि ने जितना लिखा है वह सब उनका ही जीवन-दर्शन है ऐसा नही माना जा सकता। हम कई बार कहते हैं कि महाभारत में व्यास ने 'ऐसा कहा है' या 'वैसा कहा है,' लेकिन सच सोचा जाय तो वह व्यास की अपनी दृष्टि शायद न भी हो। धर्मराज एक ढग से बोलेगे तो भीम और द्रौपदी दूसरे ढग से अपनी व्यथा प्रकट करेंगे। शकुनि के और विदुर के वचनो के पीछे एक ही जीवन-दर्शन हो नही सकता। और खूबी यह है कि कभी दुर्योधन के मुँह से उच्च विचार निकले हैं, जबकि भीष्म को वास्तववादी बनना पडा है। रवीन्द्रनाथ ने नाटक, उपन्यास, स्वल्पगल्प और महाकाव्य लिखे हैं। उस मे रवीन्द्र के जीवन

का आकलन कितना गहरा है, विविध है यह हम जान सकते है । उसमे से उन का जीवन-दर्शन अमुक ही था ऐसा हम नही कह सकते ।

उनके गीत मे भी निसर्गप्रेमी, मानवप्रेमी और जीवनोपासक भक्त— तीनो दिखाई देते हैं । और उसमे वृत्ति की विविधता इतनी ज्यादा खिली हुई है कि उसके पीछे एक ही रसिक और उत्कट आत्मा का दर्शन होने पर भी अमुक ही वृत्ति प्रधान्न है ऐसा नही कह सकते । कवि वॉल्ट विटमन ने एकबार कहा था Do I contradict myself? Well, then I contradict myself I contain multitudes मेरे इस एक कलेवर मे कितने विविध व्यक्तियो का वास है सो आप क्या जानें ? मै खुद भी नही जानता ।

मै नही मानता कि रवीन्द्रनाथ को ऐसा कहने की बारी आवे । उनमे यदि जीवन-समन्वय न होता तो मै आज का विषय लेता ही नही चाहता । उनकी आत्मकथा मे, उनके खतो मे और उनके निबन्धो मे ही स्पष्ट रूप से प्रकट होता है । और उनकी यह जीवन-दृष्टि कितनी सचोट और उत्कट है उसका साक्षात्कार उनके भाव-गीतो मे होता है ।

लेकिन उसमे भी हमे विवेक करते भी सीखना चाहिये । मैंने कहा है कि रविबाबू के बारे मे अनेक तरह से सुनते-सुनते बहुतो को अजीर्ण होने वाला है । उसका एक प्रकार बताता हूँ । कई लोग रामायण मे से या महाभारत मे से, गाधीजी मे से या रविबाबू मे से जीवन की मुख्य प्रेरणा पाने के बाद उससे ही चिपके रहते है । और उसे अपनी जीवन साधना के द्वारा दृढ करते जाते हैं । जबकि कई लोगो की अभिरुचि इससे बिलकुल उलटी होती है । 'हमने रविबाबू के बारे मे आज तक अच्छा-अच्छा बहुत-सा कहा, आगे भी अगर ऐसा ही कहते रहेगे तो लोग हमे उनके प्रशसक या भक्त समझेंगे ऐसा डर रखकर, वे दूसरी तरफ ढलते है । और फिर कहने लगते है कि "सन्त लोग भी अभिमानी हो सकते

है। उनमे मानव-सहज ईर्षा, असूया भी होती है," ऐसी-ऐसी बाते आगे करके रवीन्द्रनाथ मे वह कहाँ-कहाँ दीख पडी सो ढूंढ निकालकर अपनी तटस्थता और अलिप्तता सिद्ध करने का प्रयत्न करते है 'रविबाबू घन्टो आईने के सामने खडे रहकर अपने बाल और कपडे किस तरह सँवारतेथे, कुशल नट की तरह हाव-भाव का अभ्यास कैसे करते थे उसक भी चर्चा करते है। मनुष्य जिन्दा हो, हमारे बीच विचरता-विहरता हो उस वक्त उसके समकालीन मित्र कभी समाज मे दिल्लगी और अतिशयोक्ति करे यह समझ सकते है। लेकिन जन्म-शताब्दी के समय इस तरह कारस लेना यह तो पुण्यपर्व का प्रसाद खोने के बराबर है।

अभी एक जगह जो निबन्ध पढे गये उनमे 'हमने कल्पना की थी उतना रविबाबू का असर दुनिया पर नही है,' ऐसा सुर ही प्रधानत दिखाई दिया। उसमे रविबाबू की कमी दिखाई दी या दुनिया की उसका उन लोगो ने विचार तक नही किया। कई लोग अपनी अनुभूति के मुताबिक मूल्याकन करते है। जबकि कई शेयर-बाजारी वृत्ति धारण करके, उस-उस दिन के बाजार भाव के मुताबिक चलते हैं। गाधीजी के बारे मे भी अिसी तरह सोचने वाले लोग हमने कहा नही देखे ?

रवीन्द्र का जीवन-दर्शन विविधलक्षी होने के कारण वह समझने मे जितना आसान और तृप्तिदायक है उतना ही उसे निश्चित शब्दो मे रखना आसान नही है। इस बारे मे रवीन्द्र कुछ कहे सो भी पर्याप्त नही है। मिसाल के तौर पर डॉ० राधाकृष्णन ने रवीन्द्र के बारे में एक किताब लिखी। रवीन्द्र ने स्पष्ट लिखा कि इसमे मेरी भूमिका यथार्थ रीति से पेश हुई है। फिर भी एक अग्रेज लेखक ने कहा कि "हमे नही लगता कि उस किताब मे रवीन्द्रजी अच्छी तरह से पेश हुए हैं, लेकिन हम क्या करे ? जहा रवीन्द्र खुद मुहर लगा देते हैं कि वह ठीक है वहाँ हम लाचार है।" लेकिन वाचक, चाहक, प्रशसक और भक्त यह दावा करे कि वे खुद रवीन्द्र को रवीन्द्र से भी ज्यादा अच्छी तरह समझते है

तो ऐसा करने का उनको अधिकार है। और आने वाला हरएक जमाना शायद यह अधिकार अलग-अलग ढग से बरतेगा भी।

इतना तो स्पष्ट है कि रवीन्द्रनाथ का जीवन-दर्शन हमारे कवि, फिलसूफ, दार्शनिक और धर्मकारो की परम्परा का जीवन दर्शन होने पर भी उनकी अपनी विशिष्टता भी उसमे है। हमारे कवि और धर्मकार कोई कम जीवन-रसिक नही है। उन्होने जीवन के तीनो सप्तको का अनुभव किया है। फिर भी अपनी सस्कृति का आखरी निचोड तो वैराग्य की तरफ ही ढलता है। जीवन के कर्तव्य और रसो की धार्मिक व्यवस्था करने वाले मानव-पिता मनु प्रारम्भ मे ही कहते हैं—**कामात्मता न प्रशस्ता**। और फिर माफी मॉगते हो उस तरह आगे कहते है—**न च एव इह अस्ति अकामता**। और इसलिए चार वर्णो और चार आश्रमो की ब्यौरेवार व्यवस्था कर देते है। हमारे कवि, सन्त, राजनीतिक पुरुष और सम्राट् भी जीवन की सन्ध्या के समय दुनियावी जीवन की नि सारता पहचानकर निवृत्त होने मे ही श्रद्धा रखते है। 'यह ससार चार दिन की चादनी है, गान्धर्व नगरी की शोभा है, इन्द्रजाल है, हमारा सच्चा घर यहाँ नही है।' इस तरह के विचार ही हमारी प्रजा को सन्तोष देते हे। भर्तृहरि भी आखिर हिमालय के अरण्य मे, गगा के किनारे, वनचर और वनेचर के बीच रहकर परब्रह्म के ध्यान मे विलीन होना चाहते है। राजप्रपंच के आचार्य चाणक्य खुद सब-कुछ छोडकर प्रायश्चित के तौर पर महान् तपस्या शुरू करते है और 'ब्रह्म सत्यम् जगन् माया' का आश्रय लेते हैं।

हमारे रवीन्द्र उस वैराग्य की उपासना मे नही मानते। वे तो भार देकर कहते है, मानो चुनौती देकर कहते है: **वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नो**। वे जीवन-देवता के ही उपासक है। धर्म, अर्थ, काम—किसी भी पुरुषार्थ को गौण करने को वे तैयार नही है। हम यदि मोक्ष की बात करे तो वे कहेगे कि वह मोक्ष भी धर्म, अर्थ काम के अनुकूल होना चाहिए। 'धर्मार्थकामा सममेव सेव्या' यह व्यास वचन यदि उनके हाथ

आया होता तो उन्होने उसी वचन को अपना जीवनमन्त्र बनाया होता।

सामाजिक कर्तव्य सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए अपना जीवन बनाना, उसे हमारे लोग **धर्म** कहते है। उसमे तमाम—सदाचार, परोपकार और मनुष्यप्रेम—आ जाता है।

ऐसा सर्वकल्याणकारी जीवन सब तरह से शुद्ध, समृद्ध और समर्थ हो, इसलिए जो साधन सम्पत्ति प्राप्त करने की होती है उस समर्थ पुरुषार्थ का हमारे पूर्वजो ने **अर्थ** मे समावेश किया है।

और धर्म द्वारा अपने आपको योग्य बनाकर अर्थ द्वारा साधन सम्पन्न होने के बाद जीवन का अनुभव, जीवन का आनन्द और जीवन की समृद्धि भोगने के लिए जिस ढग से जीवन जीने का होता है उसे हमारे पूर्वजो ने लाक्षणिक नाम दिया है **काम**।

इन तीनो पुरुषार्थो को उपयुक्त मात्रा मे स्वीकार करने पर जीवन सफल होता है। तीन मे से किसी एक को ही पकडकर जो चलता है उसने जीवन जीने की कला हासिल नही की है ऐसा कहना पडेगा—

य एक सेवी स नरो जघन्य.।

युवानी मे जीवन का आस्वाद लेने के बाद जीवन बहुत करके नि सार है, क्षणजीवी है, ऐसा समझकर वैराग्य की ओर मुडना और जीवन के प्रति उदासीन होकर वैराग्य प्राप्त करके, ईश्वराभिमुख होना इस तरह की मनोवृत्ति हमारे यहाँ ही नही, बल्कि पश्चिम के मध्यकालीन ईसाई सन्तो मे भी थी। आज के जमाने को वह आदर्श सूतकी-सा लगता है। ईसाई धर्म के प्रति उनकी नापसन्दगी उसी के कारण है। और इसीलिए धार्मिकता, सदाचार और ईश्वर भक्ति मे मानते हुए भी रवीन्द्रनाथ जीवनोपासक है, यह देखकर पश्चिम के लोगो को रवीन्द्र के जीवन-दर्शन से विशेष सन्तोष हुआ। **धर्म अर्थ, काम**—तीनो से भागना यह मोक्ष नही है। लेकिन तीनो का योग्य मात्रा मे स्वीकार करने से

एकागिता से बच जाते है और जीवन की पूर्ति के बाद जो शाति और अलिप्तता प्राप्त होती है, उससे जो सन्तोष और स्वाधीनता प्राप्त होती है वही मोक्ष है—इस तरह की नई भूमिका आज के जमाने को ग्रहण करने जैसी है । इसमे रवीन्द्र का जीवन-दर्शन सब तरह से मदद-गार होगा । इहलोक और परलोक के बीच वैमनस्य नही हो सकता । जीवन और मोक्ष परस्पर विरोधी नही हो सकते । अिस तरह की श्रद्धा स्पष्ट या अस्पष्ट रूप मे, रवीन्द्र-जीवन-दर्शन की है । अभी-अभी मेरे एक विद्वान् और अनुभवी मित्र ने अपने खत मे मुझे लिखा कि '**सत्यम्, शिवम् सुन्दरम्**' यह कोई हमारी भारतीय त्रयी नही है। ऐसा लगता है कि हमारी सस्कृति पर इस परदेशी त्रयी का रविबाबू कलम चढाना चाहते है ।

मैने उनसे कहा कि **सत्यम् शिवम् सुन्दरम्** ग्रीक लोगो की यानी यावनी त्रयी है The True, The Good and The Beautiful । इनमे दो तो अपने यहाँ भी है । हम कहते है—**सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म** । ग्रीक त्रयी के साथ मेल खाये वैसा परमात्मा के लिए हमारा प्रख्यात नाम है—**सच्चिदानन्द अथवा सच्चिद् सुख** । सौन्दर्य से हमे जो रस मिलता है सो भी परमात्मा की ही विभूति है । **रसो वै सः** । मुझे सदा जो त्रयी स्फुरती है सो है—**शान्तम् शिवम् अद्वैतम्** । हमारी सस्कृति ने अनादि काल से आज तक त्रिविध शान्ति की उपासना की है। गाधीजी के प्रताप से इस शान्ति की उपासना ने नया रूप धारण किया है। शान्ति की केवल इच्छा करे, उसके स्तोत्र गाए उतना ही बस नही है। शान्ति-जैसी महँगी चीज हमसे विराट् पुरुषार्थ की अपेक्षा रखती है । शान्ति की स्थापना तो शान्ति के साथ सपूर्ण मेल खाने वाली युद्ध-नीति से ही सत्याग्रह से ही हो सकती है ।

रवीन्द्रनाथ यह बात ताड गये थे। उन्होने अपने जीवन मे स्वाभि-मान, स्वाश्रय, आत्मगौरव और तेजस्विता बनाये रखने का हमेशा प्रयत्न किया था । पश्चिम के साथ वे सहयोग करने को तैयार थे, तरसते थे,

लेकिन आत्मप्रतिष्ठा खोये बगैर। अपनी व राष्ट्र की प्रतिष्टा के बीच उन्होने भेद नही किया। इसलिए यह देखकर कि पजाब मे हम लोगो का अपमान हुआ है, उन्होने 'सर' का खिताब छोड दिया। और अपमान सहन करने के लिए वे स्वजनो के सन्निकट खडे रहे। केनेडा मे भारत के लोगो को प्रवेश न मिले इस हेतु से किये हुए अपमानास्पद नियमो को देखकर उन्होने केनेडा से मिले हुए आदर-युक्त आमन्त्रण को अस्वीकार किया। उनके लिये इस तरह की तेजस्विता स्वाभाविक थी। लेकिन कवि और शिक्षा-शास्त्री के नाते उन्होने देश के सामने अन्याय के साथ लडने का कोई कार्यक्रम न रखा। गाधीजी की तरह वे भी मानते थे कि स्वाश्रय और सहयोग की बुनियाद पर राष्ट्रसगठन करेगे, रचनात्मक कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करेगे तो स्वतन्त्रता दूर नही है। लेकिन जीवन की सम्पूर्णता के लिए जिस तेजस्विता की आवश्यकता है उसका लडायक सगठन नही करने से प्रजा चढती नही है इस वस्तु का साक्षात्कार गाधीजी को ही हुआ।

यह देखकर कि आखिरी सौ साल मे योरोप मे जो राष्ट्रपूजा बढी है सो आखिर मे सन्निपात का रूप धारण करेगी, रवीन्द्रनाथ ने पश्चिम को ठीक समय पर जाग्रत करने का प्रयत्न किया। उस रास्ते जाने मे जोखिम है ऐसी चेतावनी जापान को भी दी। और जब उनकी जीवन-ज्योति बुझ रही थी तब, पश्चिम की सभ्यता विनाश की ओर किस तरह दौड लगा रही है उसका भी चिन्ता-जनक चित्र चित्रित करके अपने मन की वेदना अुन्होने व्यक्त की, और भारत का शान्ति का सन्देश दुनिया के ध्यान मे लाने का उन्होने अतिम प्रयत्न किया।

शान्तम् शिवम् अद्वैतम् की हमारी त्रयी मे अद्वैत का तत्त्व सौन्दर्य से अनेक गुना वढकर है। जिसे सर्वसमन्वयकारी अद्वैत का साक्षात्कार हुआ है उसके सामने कुछ भी असुन्दर रहता ही नही। अद्वैत प्रेम तत्त्व है। वह सब की तरफ माँ की नजर से देखता है। और इसीलिए उसके मन मे सब कुछ यथार्थ, सप्रयोजन और इसीलिए सुन्दर होता है। लोग

कहते है कि बन्दर और कौआ असुन्दर होते है। कुदरत के उपासक को वैसा नही लगता। कहाँ मोर की विविध रगी चमकती कला और कहाँ उसकी कर्कश केका! फिर भी रवीन्द्रनाथ ने खुद एक निबन्ध मे बताया है कि 'वर्षाकाल की प्रकृति के दर्शन मे वह केका भी यथायोग्य है। उसके बगैर वर्षाश्री फीकी अलूनी हो जाती।'

भारत स्वतन्त्र हुआ उसके बाद मै अनेक खण्डो मे घूमा। तब देखा कि हर एक खण्ड की प्रजा मे अमुक-अमुक सुन्दरता है। जब उन-उन स्थानो के लोगो से मेरा परिचय हुआ, उनके बच्चो के साथ खेला तब मेरी दृष्टि बदल गई। आज मुझे ओजिप्त की नील (Nile) नदी अपनी गगा जितनी ही पवित्र लगती है। और पूर्व अफ्रिका का किलिमाजरो पहाड हिमालय के जितना ही देवतात्मा लगता है। हरएक प्रजा की सस्कृति की खूबियाँ भी अच्छी तरह समझने लगा हूँ। यह है हमारी **अद्वैत भावना**।

अद्वैत यानी प्रेम की पराकाष्ठा। अद्वैत खुद अमृत भी है। स्वामी रामकृष्ण परमहस ने एक दफा विवेकानन्द से पूछा कि 'तू अद्वैत के अमृत-सागर का आकण्ठपान कैसे करेगा?' विवेकानन्द ने कहा, 'किनारे पर बैठकर ही तो!' रामकृष्ण ने कहा, 'तुझे गोता लगाने से डर लगता है? अरे, यह तो अमृत का सागर है, उसमे मरने जैसी बात ही क्या है?

आज दुनिया मे कई अत्याचार हो रहे है। क्रूरता दीखती है। अगोला मे वहाँ की प्रजा का सत्यानाश किया जा रहा है। ऐसे अनाचार और क्रूरता के सामने जूझने का हमारा धर्म है। और इसके बावजूद जब तटस्थतापूर्वक हम लाखो साल का मानवी इतिहास जाँचते है तब हम लोगो को लगता है कि मानव जाति गलत रास्ता लेकर तरह-तरह व्यर्थ प्रयत्न करती है, फिर भी उसी अनुभव के मँहगे अन्त मे उसे विराट अद्वैत ही पाना है—साधना है। जालिम, गुलाम और शहीद एक ही मानवता के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। अिस तरह का अदैत जिसके मन मे जाग्रत हुआ है वही अहिंसक रह सकता है, और मानव जाति के भविष्य का रास्ता भी वही निश्चित कर सकेगा। केवल सौन्दर्य की उपासना

सस्कृति को अच्छा आकार दे सकती है सही, लेकिन विश्व-मागल्य की स्थापना तो अद्वैत की ठोस बुनियाद पर ही हो सकती है। अद्वैत से कम दरजे का तत्त्व वह भार वहन नही कर सकेगा।

हमारी सस्कृति के केन्द्र मे मुख्य वस्तु है जीव मात्र के प्रति आत्मैक्य। मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप और कीटक सभी एक ही प्राण-तत्त्व के अलग-अलग आविष्कार है। स्वर्ग के देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि योनियाँ, और पितर, भूत, प्रेत आदि यमलोक मे बसने वाले, जो माने सो सभी वस्तुत एक ही जीवन के, भिन्न-भिन्न भूमिका पर हुए, अवतार है। इस केन्द्रीय जीवन-दर्शन पर हमारी सस्कृति रची हुई है। हमारी सस्कृति एक तरफ शरीर और उसकी वासनाओ के स्वरूप को पहचान कर वैराग्य-साधना सिखाती है। दूसरी तरफ सभी जीवो के प्रति और चराचर विश्व के साथ आत्मीयता और अभेद महसूस करने की साधना विकसित करती है। इसीलिए प्रथम से ही यह सस्कृति ईश्वर-परायण हुई है।

हम उस ईश्वर को किस रूप मे पहचानते है उसका क्रम-विकास देखते हुए भी, रवीन्द्र के जीवन-दर्शन की विशेषता हम समझ सकेगे।

हमारे दार्शनिक पूर्वजो ने आर्य सस्कृति के उष काल मे ही पहचान लिया था कि जो अन्तरात्मा है, अन्तर-तर है, वही त्रिलोकात्मा, विश्व-आत्मा, परमात्मा है। फिर भी जीवनानुभूति की अपूर्णता के कारण और रुचि के वैचित्र्य के कारण हमने परमात्मा की अनेक विभूतियाँ कल्पी और उन सबके प्रति समभाव पूर्वक भक्ति रखी।

दुनिया के कई धर्म 'मानो ईश्वर को उन्होने ही ढूँढ निकाला है' इस तरह उसका ठेका, इजारा या पेटण्ट-राइट लेना चाहते है और ईश्वर के पास किसीको जाना हो तो हमारा पासपोर्ट लेकर ही वे जा सकते है ऐसा भी दावा करते है। हमारे यहाँ ऐसा नही है। भगवान मानो खुले मैदान मे, अथवा मैदान के बीच पहाड के शिखर, पर विराजमान है, उसके

पास जाने के जितने भी रास्ते मनुष्यने ढूँढ निकाले वे सब सच्चे ही है। आप भूल कर सकते है, लेकिन भक्तो को पहचानने वाले भगवान् तो खुद खडे ही है। जिस तरह चुम्बक लोहे के कण को जहाँ हो वहाँ से खीच लेता है, उसी तरह भगवान् हरएकको उसकी साधना सूचित करता है और अपने चरणो मे स्थान देता है, यह हमारी श्रद्धा अपने कवि के काव्य मे उत्तम ढग से प्रतिबिम्बित हुई है।

हमारा धर्म प्राचीन-से-प्राचीन होने के कारण उसमे साधना के जाले इतने ज्यादा हो गये हैं कि ब्रह्म-समाज और प्रार्थना-समाज को बहुत सारी सफाई करने का मन हुआ। रवीन्द्र के पिता ब्रह्मसमाज के महर्षि थे। रवीन्द्र को पिता से उनकी साधना विरासत मे मिली। सचमुच यह उनका बडा ही सौभाग्य था।

वेदकाल के इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देव आज नही रहे। वेदकाल के उनके चित्रो मे और पौराणिक चित्रो मे भी बहुत फर्क पडा है। उसके बाद शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य-नारायण और देवी—इन पचायतन की पूजा उसके अनेकानेक रूप मे चली। दत्तात्रेय और हरिहर जैसे समन्वित देव भी पूजे गये। वह उपासना हमारे देश मे अब तक नष्ट नही हुई है। फिर भी ईश्वर विषयक हमारी कल्पना बहुत बदल गई है। 'पुराने धर्म-ग्रन्थ और दर्शन' जिनके अवयव है ऐसे परमात्मा की उपासना कई अध्यात्म ग्रन्थो के प्रारम्भ मे हम पढते है। वे रूपक हमे पसन्द आते हैं और फिर भी हम उनके साथ तदाकार नही हो सकते।

जब कुरानशरीफ मैने पहले-पहल पढा—और वह भी मराठी मे तब उसकी एकेश्वरी भक्ति मे और मूर्ति-पूजा-खण्डन मे मैं इतना सराबोर हो गया कि उसका सारा जनून मेरे पर सवार हो गया। आज विचार करने पर कुरानशरीफ मे ईश्वर का जो चित्र है और वेदान्त मे परमात्मा का जो वर्णन है वह एक ही ईश्वर का होने पर भी अलग-अलग लगता है। बायबल के पुराने करार—तौरात मे और नये करार-

ईंजील मे ईश्वर के चित्र बिलकुल अलग है । पश्चिम के आज के मनुष्य की कल्पना से वे दोनो चित्र कितने अलग है उसका वर्णन बर्नार्ड शा ने एक छोटी-सी किताब मे आबाद ढग से किया है । उस किताब का नाम है—
A black gırl ın search of God

मानव जाति ईश्वर को पूजती है सही । लेकिन उसका ईश्वर का आकलन प्रत्येक देश मे और प्रत्येक युग मे अलग-अलग होता है । रवीन्द्रनाथ ने हमारी वेदान्त की विविध परम्परा और वैष्णव भक्ति मे से ईश्वर का जो चित्र निखारा है सो इतना सार्वभौम है कि अनेक देश के, अनेक धर्म के और अनेक सस्कृति के लोगो ने जब 'गीताजलि' पहले-पहल पढी तब किसी को कुछ भी खटका नही । जहाँ दार्शनिको की दाल न गली, धर्मोपदेशको को जहाँ सिद्धि न मिली वहाँ इस विश्व-कवि की काव्यात्मा ने सब की सहानुभूति प्राप्त की । अितना ही नही लेकिन अनेक ढग से बनाई भी ।

रविबाबू का फिलसूफ होन का दावा नही है । धर्म-प्रचार का काम उन्होने नही किया । समाज-शास्त्र पर उन्होने ग्रन्थ नही लिखे । इस क्षेत्र के तद्‌विद उनको अपनी पक्ति मे बैठने भी नही देगे । और फिर भी उन्होने इन अनेक विषयो का और अनेक तरह की साधनाओ का निचोड अपनी कृतियो मे दिया है ।

सबसे सब-कुछ लेने पर भी कवि उन सबके परे और स्वतन्त्र किस तरह रह सकते है यह स्पष्ट करने के लिए मानो उन्होने आखिर-आखिर मे अपनी प्रतिभा चित्रकला के क्षेत्र मे प्रवाहित की । उसमे तो कल्पना-विलास है । न तो उसमे कोई बोध है, न बन्धन । फिर भी हम उसमे सामजस्य, समन्वय, सप्रमाणता और औचित्य का उत्कर्ष ही देख सकते है । रविबाबू की चित्रकला की खूबी यह है कि वे हमे किसी तरह बाँधते नही । अमुक ही रास्ते ले जाने का उनका आग्रह नही है । उनके चित्रो मे से जो चाहे सो आप ले सकते है। हर वक्त आपको कुछ नया

ही मिले तो वह आनन्द का विषय है। कवि की निराग्रही वृत्ति उसमे पूरी-पूरी खिली है। वे कह सकते है कि 'मेरी चित्रकला एक ढग से कहूँ तो अपौरुषेय है। मैने चित्र चित्रित नही किये, उन चित्रो के पीछे मै ही चित्रित हो गया हूँ।'

आज का जमाना और आयन्दा की दुनिया ऐसा निराग्रही नेतृत्व ही पसन्द करेगी। अपना व्यक्तित्व थोडा-सा भी खोये वगैर, सार्वभौमत्व विकसित करने मे रवीन्द्रनाथ ने जो सिद्धि पाई है वही उनका जीवन-दर्शन है।

हमारी सस्कृति मे शक्ति-उपासना का जो भाग है और उसने बगाल मे और अन्यत्र भी जो विकृत रूप धारण किया है उसके बारे मे ब्राह्म परम्परा के रवीन्द्रनाथ मे इतनी चिढ थी कि उन्होने परमेश्वर को माता समझकर 'वन्देमातरम्' का जयघोष करने से भी इन्कार कर दिया।

उस शक्ति-उपासना का पुराना लेकिन उज्जवल रूप हम रामकृष्ण परमहस मे देखते है। महाराष्ट्र के सन्तो ने शाक्त अनाचारो का सख्त-से सख्त विरोध किया। लेकिन दक्षिणाचारी शक्ति-उपासना रहने दी। समर्थ रामदास ने शक्ति को हनुमान का रूप देकर, गॉव-गाँव मे हनुमान के मन्दिर खोलकर उनके साथ पहलवानो के अखाडे स्थापित किये। स्वामी विवेकानन्द को भारतभ्रमण के दरमियान यह शक्ति-उपासना जब देखने को मिली तब वे प्रसन्न और प्रभावित हुए। शक्ति-उपासना का आज के जमाने के लिए उत्तमोत्तम निरूपण श्री अरविंद घोष के लेखो मे मिलता है। और परमात्मा की अथवा आत्माराम की दैवी-शक्ति की उपासना कैसे की जा सकती है और वह केवल व्यक्ति को ही नही सारे समाज को कहाँ तक ले जा सकती है वह गाधीजी ने बताया। शक्ति की दैवी उपासना के बिना जीवन सम्पूर्ण नही हो सकता। शुद्धि, समृद्धि और सामर्थ्य—यह तीन पहलू यथा-प्रमाण साधने पर ही जीवन-दर्शन पूर्ण

हुआ समझा जा सकता है। ईश्वर-निष्ठा, मानव प्रेम और अन्याय-अत्याचार का सात्विक, समर्थ प्रतिकार इन तीनो क्षेत्रो मे समाज को जो रास्ता दिखाता है वही युगपुरुष हो सकता है।

इस युग के लिए ईश्वर की योजना ही ऐसी है कि उसने भिन्न-भिन्न पहलुओ को खोलकर दिखाने वाले अनेक युगपुरुषो से हमे नवाजित किया। हम अभेद बुद्धि से उन सब की प्रेरणा ग्रहण करे और विश्व-मानव का आवाहन करे। ऐसा करते हुए हमे रवीन्द्र जैसे जीवन ऋषियो का, कृतज्ञतापूर्वक तर्पण करना चाहिए, वह भी हमारी युग-साधना का एक परम मगल अग है।[1]

---

१ गुजरात साहित्य परिषद् के तत्त्वाधान मे दिया हुआ भाषण।

—※—

क्रान्तिकारी देशभक्त और क्रांतिकारी योगी

योगी श्री अरविंद घोष जीवन-क्राति के अेक लोकोत्तर नमूना थे।

पिता की अिच्छा थी कि अपना लडका लॉर्ड मेकॉले के वर्णन का श्यामवर्णी अँग्रेज बने। शिशुकाल मे ही वे विलायत भेजे गये। जीवन के प्राथमिक सब सस्कार अुन को अँग्रेजी खानदान मे ही मिले। विद्यार्थीकाल मे केवल अँग्रेजी साहित्य के नही किन्तु युरोप के सस्कार की गगोत्री जैसे ग्रीक साहित्य के सस्कार भी अुन्हे मिले। अिन के भाअी, सशस्त्र-क्राति के नेता बारीद्र कुमार का जन्म तो किसी ब्रिटिश जहाज पर ही हुआ था।

भारतीय भाषाये, भारतीय साहित्य और भारतीय संस्कार अिन सभी बातो से वचित युवान अरविंद ने भारत मे आते ही अिन सब बातो का अध्ययन शुरू किया और अिन मे असाधारण प्रगति की। ब्रिटिश सस्कृति के दास या शिष्य न रहकर वे भारतीय सस्कृति के अुपासक, भक्त और आचार्य बने। बाह्य परिस्थिति और बचपन के सस्कार कैसे भी हो, तेजस्वी और वीर्यवान् व्यक्तियो की आत्मिक विरासत कभी नष्ट नही हो सकती अिस सिद्धात का श्री अरविंद घोष अेक अुज्ज्वल नमूना थे। ब्रिटिश सस्कृति मे बचपन से पले हुअे होने के कारण अुस के गुणदोष वे रगरग जानते थे। अन्य लोगो के समान अुस सस्कृति से चौधिया जाना अुनके लिअे अशक्य था। हिन्दुस्तान मे आकर अुन्हो ने अध्यापन कार्य किया। साथ-साथ अध्ययन कार्य भी। बगभग के आन्दोलन के दिनो मे अुन्हे अपना क्षेत्र मिल गया। कलकत्ते से 'वदेमातरम्' नाम का अेक दैनिक पत्र निकलने लगा, जिस मे अरविंद बाबू अक्सर

लिखा करते थे। सुबोधचन्द्र मल्लिक भी लिखते थे। उन्ही का वह अखबार था। अुन दिनो हम नवयुवको को सास्कृतिक राष्ट्रीयता की सर्वोच्च भूमिका 'वदेमातरम्' के द्वारा मिलती थी। आदर्श-जीवन, देश-भक्ति, त्याग और बलिदान यही था वदेमातरम्' का सदेशा। जिस तरह'यग अिन्डिया' ओर 'नवजीवन' के द्वारा गाधीजी ने वर्तमान युग को तैयार किया अुसी तरह अुन दिनो 'वदेमातरम्', ने सारे राष्ट्र को राजनैतिक अध्यात्म का पान कराया और नव-निर्माण की बुनियाद डाली। सचमुच वह युगातर का काल था। केवल राजनैतिक ही नही किन्तु सास्कृतिक स्वावलबन, स्वाभिमान और आत्मगौरव की दीक्षा दी सारे राष्ट्र को अरविंद घोष ने। स्वदेशी बहिष्कार के आदोलन के साथ अुन दिनो लाल-बाल-पाल की त्रिपुटी भारतीय आकाश में प्रगट हुअी। लाला लाजपतराय, बाल गगाधर तिलक और बिपिनचद्र पाल ये थे अुस जाग्रति के आद्य आचार्य। बिपिन पाल ने हमारी राजनैनिक विचार-धारा बहुत कुछ शुद्ध की। डॉन सोसायटी के लेखको ने भारतीय सस्कृति की भव्यता हमारे सामने प्रगट की, और हमारा हीन-भाव नष्ट हो गया। हम सब कुछ कर सकते है, विश्व-विजय भी कर सकते है, जगद्गुरु का स्थान तो हिन्दुस्तान का ही है अैसे भाव हम नव-युवको मे दृढ हो गये।

स्वदेशी-बहिष्कार के आदोलन के बाद बम-युग आया। अुस हत्या-काड ने अँग्रेजो को ही बडी मदद की और राष्ट्रीय जाग्रति को दब जाना पडा। बम-युग के आने से कविवर रवीन्द्रनाथ राजनीति से विमुख हो गये। अुन्हो ने शिक्षा, साहित्य, सगीत, चित्रकला और लोकसेवा का मार्ग ग्रहण किया। ब्रिपिन पाल की प्रवृत्ति कुछ विकृत हो गयी और राष्ट्रीय जाग्रति के तेजस्वी सूर्य अरविंद घोष गूढ आध्यात्म की ओर मुडे।

प्रकृति और पुरुष की लीला के फल-स्वरूप यह सारी सृष्टि चल रही है। अिन दोनो का रहस्य अत्यत गूढ है। अुस रहस्य के सशोधन के

लिअे अपने जीवन को भी गूढ बनाने का श्रीअरविंद को सूझा। सुरक्षित स्थान पाकर वहाँ अुन्हो ने योगविद्या का अनुसधान चलाया। प्राचीन अृषि, मुनि, आचार्य और अवधूत का पथ अुन्हो ने अपनाया। 'वेदकालीन और पुराणकालीन खोज समाप्त नही हुअी है, तत्र की साधना निष्फल नही है' अैसा विश्वास दिलाने वाले जो महापुरुष हमारे जमाने मे हिन्दुस्तान में पैदा हुअे अुन मे श्रीअरविंद का हरअेक स्थान सब से ऊँचा है। हरेक की साधना अलग-अलग होती है। रामकृष्ण परमहंस अेक अैसे सत थे कि जिन्हो ने पारी-पारी से अनेक साधनाओ का स्वय अनुभव किया। श्री अरविंद ने अनेक साधनाओ का समन्वय करने का अेक नया अजीब तरीका ढूँढ बताया।

श्री अरविंद ने मानवी सस्कृति के सपूर्ण विकास का खयाल कर के आध्यात्मिक क्राति के आगमन की दुदुभि बजायी। और 'अेक दो व्यक्तिओ के जीवन मे नही किन्तु समस्त मानव जाति के जीवन मे अद्‌भुत परिवर्तन होनेवाला है और मनुष्य मे मन और बुद्धि से श्रेष्ठ अैसी अेक नयी शक्ति प्रगट होनेवाली है।' अैसी भविष्यवाणी अुन्हो ने की है।

श्री अरविंद की वाणी अग्रेजी मे प्रकट होने के कारण और अुन की शैली भी अत्यत प्रौढ होने के कारण हमारे लोगो को अुस का पूरा लाभ नही मिला। पश्चिम के कअी विचारको ने श्री अरविंद के ग्रथो मे अधिक लाभ अुठाया है और वे अुस से प्रभावित भी हुअे है।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमेशा कहते थे कि 'अध्यात्म के क्षेत्र मे अेक की साधना दूसरे के काम मे नही आती। हरअेक को अपनी नौका किसी नक्शे के बिना ही अज्ञात के समुद्र मे ले जानी पडती है।' कवि की साधना की ही वह शायद खासियत हो। गाधीजी के साथ अखड रहनेवाले या अुनके कार्य को जोरो से बढानेवाले अुन के अनेक शिष्य, अतेवासी या सेनापति गाधीजी के तत्त्वज्ञान को, अुन के सिद्धातो को और अुनकी जीवन-दृष्टि को विशद रूप से दुनिया के सामने रख सकेंगे।

लेकिन गाधीजी की आध्यात्मिक साधना कैसी थी अुस के बारे मे वे भी शायद निश्चित रूप से कुछ कह नही सकेगे । आध्यात्मिक साधना है ही अैसी गूढ वस्तु ।

श्री अरविद ने अपनी साधना समझाने का और अुस साधना के रास्ते अनेक साधको को ले जाने का प्रखर और सतत प्रयत्न किया है । वे अपने जीवन के प्रारभकाल मे अध्यापक थे । अपने जीवन का सारा अुत्तरार्ध अुन्हो ने आध्यात्मिक अध्यापन का कार्य किया । खोज करना, अुग्र साधना चलाना, औरो को दिशा दिखाना और भविष्यकाल को नजदीक लाना यह सब काम अुन्हो ने किया । अुनकी साधना पद्धति का विवरण अुन के लेखो से, ग्रथो से और शिष्यो को लिखे हुअे पत्रो से हमे जरूर मिलेगा ।

अितना होते हुअे भी मन यही कहेगा कि जो ऊँचाअी श्री अरविंद ने हासिल की वही अूँचाअी फलाने साधन-क्रम के रास्ते जाने से हर कोअी हासिल कर सकता ही है अैसा हम प्रयोग और अुदाहरण के द्वारा जब तक सिद्ध नही कर सकते है तब तक अुन की साधना भी अुन्ही की रहेगी । जब वह साधना सर्वसुलभ होगी तभी विश्वव्यापी नव-मानवता का अुदय होगा ।
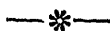
गांधीजी की विभूति

१६१५ की जनवरी मे जब गाधीजी कायम के लिअे स्वदेश मे रहने, दक्षिग आफ्रिका से भारत आये तब कुछ दिन बम्बअी मे रहकर वे शातिनिकेतन पहुँचे। क्योकि अुन के प्रिय मित्र चार्ली अॅण्ड्रूज ने गाधीजी के आश्रमवासियो को शातिनिकेतन मे रखा था। अिन आश्रम-वासियो को फ़िनिक्स-पार्टी कहते थे। क्योकि दक्षिण आफ्रिका का गाधीजी का आश्रम जिस स्थान मे बसा था, अुसका नाम 'फिनिक्स' था।

फिनिक्स नाम के साथ पश्चिम की अेक पौराणिक कथा है। माना जाता है कि फिनिक्स अेक पक्षी है, जो वृद्ध होनेपर स्वेच्छा से अग्नि तैयार कर के अुस मे कूद पडता है। अिस तरह अग्नि मे कूदकर अुस के मरने के बाद अुस के शरीर की रक्षा से अेक नया ही फिनिक्स पक्षी तैयार होता है। मैने अिस पक्षी को नाम दिया है 'अग्निसम्भव।'

(गाधीजी ने कअी आश्रम स्थापित किये और अुन का विसर्जन भी किया। अेक आश्रम के बन्द होने के बाद दूसरा आश्रम खडा हो जाता था। अिसलिअे गाधीजी की आश्रम-परम्परा को भी मैंने 'अग्निसम्भव' कहा है।)

गाधीजी की फिनिक्स-पार्टी शातिनिकेतन मे रहती थी अुसी अरसे मे मैं भी शातिनिकेतन का परिचय पाने के लिअे वहाँ जा पहुँचा था। वही पर फिनिक्स-पार्टी से मेरा परिचय हुआ। अितना ही नही किन्तु गाधीजी के व्यक्तित्व और कार्य के प्रति असाधारण आकर्षण होने के कारण मै फिनिक्स पार्टी मे देखते-देखते शरीक हो गया।

(अिस घटना का वर्णन मैंने 'बापूकी झाँकियाँ' मे कुछ विस्तार से दिया है। अिस वास्ते वहाँ अुस की पुनरुक्ति नही करूँगा।)

गाधीजी का नाम सबसे पहले मैंने कब सुना, अुसका स्मरण करता हूँ तब, अुस समय की कुछ मानसिक गडबडी भी याद आती है।

मै ने अखबारो मे पढा कि गाधीजी ने दक्षिण आफ्रिका मे वहाँ की गोरी सरकार के खिलाफ भारतीय मजदूरो के हक मे एक आन्दोलन उठाया है और लोगो को परिस्थिति समझाने के लिए उन्होने भारतीयो को किसी मसजिद मे इकट्ठा कर के एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। मेरे मन ने सवाल पूछा—"ये गाधी कौन है ?" तुरन्त स्मरण हुआ कि अमेरिका मे सर्वधर्म परिषद् के सामने स्वामी विवेकानन्द ने जो भाषण दिया उस का वर्णन करके स्वय विवेकानन्द ने लिखा था कि Mr Gandhi represented the Jains—'जैनियो की ओर से गाधीजी ने एक व्याख्यान दिया।' मैने मान लिया कि यही वह गाँधी होने चाहिए। स्वय जैन होकर मुसलमानो की मसजिद मे भारतीयो को सगठित करनेवाले इस व्यक्ति के प्रति मेरे मन मे आदर पैदा हुआ।

बहुत दिनो के बाद पता चला कि अमेरिका मे जैनधर्म की बात करनेवाले गाधी कोई अलग थे। और ये दक्षिण आफ्रिका के गाधी अलग है। ये जैन नही किन्तु वैष्णव है। उस वक्त यह भी पढा कि किसी जैन साधु के प्रति भक्ति होने के कारण गाधीजी की माता ने युवान मोहन को विलायत भेजने के पहले, उस जैन साधु के पास ले जाकर उस से व्रत लिवाया कि मधु-मद्य, मास और परस्त्री तीनो से वे परहेज रखेगे।

आगे जाकर पता चला कि श्रीमद् राजचन्द्र नामक कोई जैन धर्म-जिज्ञासु जवाहिरे के साथ गाधीजी का पत्र-व्यवहार हुआ था और राज-चन्द्र का गाधीजी के दिल पर बडा प्रभाव पडा था। मै ने सोचा कि गाधीजी असली जैन भले ही न हो और अमेरिका न भी गये हो, लेकिन

मैने उन को सस्कार मे जैन माना इस मे कुछ तथ्य निकला सही ।

इस के बाद किसी अखबार मे गान्धीजी की किताब 'हिन्द स्वराज' का सार मैंने पढा, जो मुझे बहुत ही विचार-प्रेरक मालूम हुआ । आनन्द इस बात का हुआ कि इस आदमी ने जीवन के सभी पहलुओ पर गहरा विचार किया है । और ऐसे सब पहलू मिल करके ही 'जीवन' बनता है । इसलिए अगर जीवन एकरूप है तो उस के सब पहलुओ मे साम-जस्य या मेल होना ही चाहिए । जीवन की फिलसुफी भी एकरूप ही होनी चाहिए ।

जब मै कॉलेज मे पढता था तब मैने तत्वज्ञान का विषय इसलिए पसन्द किया था कि सर्वव्यापी, सर्वसमन्वयकारी जीवन तत्वज्ञान मै ढूँढ निकालूँ । उन दिनो समन्वय शब्द मैने सुना भी नही था । मैने अपने अध्यापक से कहा था—

"I want to study and peısue the various types of thinking If I find a man believing in one thing, in one department of life I must be able to tell easily what he must think, if he is consistant, in the matter of other departments of life In short, I want to know what are the main outlooks and inlooks on life"

(बहुत बरसो के बाद आफ्रिकन मिशिनरी स्विट्झर की किताब देखी । उस मे एक अच्छा शब्द मैंने पाया—World View उसका अनु-वाद मैने जीवन-दर्शन और विश्वरहस्य-दर्शन से किया था।)

गाधीजी के 'हिन्द स्वराज्य, मे मैने एक सम्पूर्ण, सर्वांगीण, जीवन दर्शन का रहस्य पाया और मन मे अभिलाषा जागी, इस आदमी को किसी दिन देखना-मिलना ही चाहिये ।

मेरे पुराने साथी श्री राजगम या हरिहर शर्मा, जिन्हे हम 'अण्णा' कहते थे, रगून जाकर गाधीजी के मित्र श्री प्राणजीवन मेहता के वहा

ट्यूटर का काम करते थे। उन के मुह से भी गाँधीजी के बारे मे मैने सुना। मेरे एक दूसरे मित्र राष्ट्रीय शिक्षण के पुरस्कर्ता श्री भाई कोतवाल दक्षिण आफ्रिका जाकर गाँधीजी के आश्रम मे रहे थे। इतना ही नही, किन्तु आश्रम मे उन का ऊँचा स्थान था। तेजस्वी देशभक्त, कष्टसहिष्णु, हर तरह का काम करने मे कुशल और धार्मिक उपवास करने मे शूर, इतने गुण देखकर गाधीजी भाई कोतवाल पर बड़े ही प्रसन्न हुए, इसमे कोई आश्चर्य नही। भाई की सब बाते यहाँ मुझे नही लिखनी है। लेकिन उन के मुँह से मैने गाधीजी के जीवन और तत्वज्ञान के बारे मे बहुत कुछ सुना था जो मुझ पर गहरा असर कर सका।

जब गाधीजी ने दक्षिण आफ्रिका मे सत्याग्रह शुरू किया तब माननीय श्री गोखले और रेव्ह० मि० अण्ड्रूज दोनो ने भारत से पैसा इकट्ठा कर के उन के पास भेजा था। हरिद्वार के गुरुकुल के विद्यार्थियो ने नदी का एक बाध बाँधने का ठेका लेकर शरीरश्रम से जो पैसा कमाया वह दक्षिण आफ्रिका मे गाँधीजी के पास भेजा। इन का यह उदाहरण देखकर हरिद्वार के ऋषिकुल के विद्यार्थियो ने, जहा मै अवैतनिक काम करता था—आठ दिन भोजन मे घी छोडकर उस के बचे हुए पैसे दक्षिण आफ्रिका भेजे थे।

यह लिख रहा हूँ तब एक प्रसग याद आ रहा है, जो मैं बिलकुल भूल गया था। सन १९०८ की बात होगी। मै एक छोटी सी राष्ट्रीय शाला का आचार्य था तब हमारे बेलगाम शहर मे दक्षिण आफ्रिकन सरकार का निषेध करने के लिए एक सभा हुई थी, जिस मे मैने कहा था कि 'हमे उन गोरे लोगो को सुशिक्षित और सस्कारी कहने की आदत पडी है। आयन्दा हमे दक्षिण आफ्रिका की सरकार को civilzed नही कहना चाहिए।' (कितनी दुख की बात है कि आज भी दक्षिण आफ्रिका की सरकार को civilized कह सके ऐसी हालत नही है।)

गाँधीजी को मैं शान्तिनिकेतन मे मिल सका उस के पहलेका वाता-

वरण मैने यहा दिया है। जब गाधीजी के मित्र श्री प्राणजीवन मेहता को मै बम्बई मे मिला तब बडे उत्साह के साथ उन्हो ने कहा था कि गॉधीजी की प्रेरणा से जो भारतीय अनपढ मजूर दक्षिण आफ्रिका मे सत्याग्रह कर रहे हे उन मे से चद आदमी यहा के भारतीय नेताओ से राजनीनि के अधिक माहिर है। उनका कहना जैसा के वैसा मजूर करना कठिन था। लेकिन भारत के एक बॅरिस्टर, M D, झवेरी के मुह से ऐसी बात सुनते गाधीजी की विभूति का कुछ-कुछ ख्याल आने लगा था।

गॉधीजी से मिलने के बाद जो बात सबसे प्रथम ध्यान मे आयी वह थी उनका आत्मविश्वास। जब बोलते थे, अपने विचार बिलकुल स्पष्ट शब्दो मे और निश्चय के साथ कहते थे। उनकी नम्रता, उनकी सेवा के द्वारा व्यक्त होती थी। किसी की भी सेवा करने का मौका मिला, कि तुरन्त वे आगे बढकर सेवा मे लग जाते थे। हरएक व्यक्ति के अभिप्राय के बारे मे उनके मन मे आदर रहता था। वे किसी की उपेक्षा नही करते थे।

अपने बारे मे उन मे न अभिमान था, न आत्मविश्वास का अभाव, इसलिए उन की सीधी बाते कभी-कभी चुभती भी थी। लेकिन दूसरे ही क्षण मन मे विचार आता कि इस मे चुभने का कोई कारण नही है। सीधी बात साफ-साफ कहते है, इस मे आश्चर्य के लिए स्थान नही हे। आश्चर्य तो यह है कि दूसरे लोग— बहुत से लोग इस तरह से साफ-साफ नही कहते। उनके जैसे सस्कारी लेकिन कुदरती आदमी देखने को कम मिलते है यह कुछ उनका दोष नही है।

विचित्र बात यह है कि उन के थोडे से परिचय से उन की यह विशेषता ध्यान मे आते ही उन के प्रति एक किसम की निष्ठा पैदा होती थी। उन्हे मिलने के पहले ही मै उन का भक्त बन गया था। मेरी बात नही कहता हूँ। लेकिन बिलकुल अपरिचित आदमी भी उन की सादगी

और सीधाई से प्रभावित होकर उन के प्रति तुरन्त अनुकूल हो जाता था।

प्रथम परिचय के दो-तीन सस्ममरण 'बापू की झाँकियाँ' मे दिये है इस वास्ते यहाँ नही देता हूँ। लेकिन गाधी जी के साथ चर्चा करते ही और एक गहरी छाप मन पर पडी, वह यहा देना जरूरी है।

पश्चिम के विज्ञानशास्त्री हरएक बात के लिए सबूत देकर अपनी बात लोगो के मन पर ठसाते है। 'प्रत्यक्ष अनुभव और ठोस दलील के बिना कुछ नही कहना' यह विज्ञानशास्त्री का स्वभाव ही होता है। गाँधीजी के बोलने और बरतने मे यही खूबी दीख पडती थी। किसी ने कुछ कहा तो तुरन्त उस कथन की जाँच-पडताल करने का उन का स्वभाव देखकर कुछ अस्वस्थता सी मालूम होनी थी। 'हमे जो कुछ कहना है, हमने कह दिया। मानना न मानना आप की मौज।' इस वृत्ति से लोग बोलते है। यानी हम जो कहते है उस पर कितना विश्वास करना आप जाने। गाँधीजी मन मे कहते थे कि 'मैं सत्यवादी हूँ। मैं मान ही लेता हूँ कि आप भी सत्यवादी है। आप की बात आदर के साथ सुनने के लिए मै बँधा हुआ हूँ। इसलिए अगर आपकी कोई बात मेरे ध्यान मे नही आवे तो मैं जरूर आप को प्रश्न पूछ कर अपनी बात स्पष्ट करने के लिये आप को कष्ट दूँगा। अगर अनुभव हुआ, आप पारमार्थिक नही है, सुनी-सुनाई बात यूँ ही कह देते है, तो मामला अलग हो जाता है। फिर तो मुझे कहना ही पडेगा कि आपकी बात ध्यान मे नही आती, मेरा अनुभव अलग है।'

इस तरह व्यवहार मे और जीवन के अनुभव मे वैज्ञानिक ढग मे सोचनेवाले और ठोस अनुभव की बुनियाद पर ही आगे कदम उठाने वाले गाँधीजी की चन्द बाते गहरी श्रद्धा की होती थी। इस दुनिया का रोजमर्रा का अनुभव कुछ भी हो, चन्द श्रद्धा की बातें वे छोड ही नही सकते थे। इतना ही नही किन्तु उन का इन बातो पर का विश्वास तनिक भी विचलित नही होता था।

जिस तरह अनन्य भक्त गुरुवचन पर अनन्य श्रद्धा रखते है, उसी तरह चन्द बातो पर उन का विश्वास अनन्य, दृढ और अविचल था। इसलिए मन मे अनुमान होता था कि यह आदमी इस दुनिया का नही है। किसी दैवी दुनिया से कुछ काल के लिये, अपना कार्य पूरा करने के लिए इस दुनिया मे आया है।

एक मामूली उदाहरण दे कर मेरी बात स्पष्ट कर दूँ। जब कोई अँग्रेज अफसर हिन्दुस्तान मे आ कर काम करता था तब उस की बातो पर से इतनी बातें तो स्पष्ट होती थी वह मानो कहता था कि "मैं इस देश का आदमी नही हूँ। मेरा देश अलग है। मेरी सस्कृति अलग है। मैं आपके कानून से नही, लेकिन मेरे देश के कानून से बँधा हुआ हूँ। अगर किसी अनुचित काम के लिए मुझे शरमाना पडे तो मै अपने समाज के सामने शरमाऊँगा। अगर किसी सत्कृत्य के लिए मुझे पुरस्कार पाना है तो वह मै अपनी सरकार और अपने समाज के पास से पाने की अपेक्षा रखूँगा। मेरे विचार और मेरे आदर्श आप के सामने रखूँगा। मै चाहता हूँ कि आप मेरे आदर्श को पसन्द करे। लेकिन वह आप के सोचने की बात है।'

गाधीजी यहाँ की दुनिया से इतने अलिप्त नही रहते थे। लेकिन उन की निष्ठा उन के सत्यलोक के प्रति ही थी। इस कारण लोगो के मन पर उन की बातो का अज्ञात और गहरा प्रभाव पडता था।

वे समझने के लिए तैयार थे। तैयार ही नही बल्कि हमेशा आतुर दीख पडते थे। लेकिन अपनी सत्यनिष्ठा को सँभाल करके ही। सत्य के साथ प्रतारणा कर के कही भी समझौता करना उन के लिये बिलकुल ही शक्य नही था।

इस स्वभाव का अथवा इस जीवन साधना का एक परिणाम यह था कि वे सर्वकाल अपने भाषण मे, वर्तन मे और जीवन मे सजग, सतर्क और आत्मस्थित रहते थे। उन के विनोद मे, आमोद-प्रमोद मे, हँसी-

मजाक मे यह जागरूकता कभी भी शिथिल नही हुई। अगर उन्हे कही लगा कि जागरूकता स्वल्प मात्रा मे ढीली पडी है तो वे तुरन्त अपने को जगाते थे। शिथिलता के लिए जाहिर पश्चात्ताप करते थे। और अधिक सचेत रहने का निश्चय करते थे।

उन की यह अखण्ड साधक दशा ही उन्हे बडे बेग से आगे ले जाती थी। सन् १९१५ की जनवरी से लेकर १९४८ की जनवरी तक की एक तृतीयाश शति का मैंने यथाशक्ति निरीक्षण किया। उन की आतरिक प्रगति इतनी जोरो से होती थी कि उस की तेज और अद्भुत रफ्तार ध्यान मे आये बिना नही रहती थी। किसी समय मैने एक उदाहरण दिया था। जेब-घडी मे निमिष बताने वाला कॉटा चलता है, सो तुरन्त ध्यान मे आता है। मामूली ऑखे उस की गति या प्रगति देख सकती है। मिनिट का काँटा और घण्टे का कॉटा आगे बढता है उस की प्रगति हम उस की स्थिति का बदल देखकर अनुमान से पहचानते है। चन्द लोगो की बाह्य-प्रवृत्ति आखो के सामने स्पष्ट होती है। ऑतरिक प्रगति का अनुमान ही करना पडता है चन्द लोगो के जीवन मे अदरूनी प्रगति नही के बराबर होती है। बाह्य प्रगति के साथ ऑतरिक प्रगति की जगह कभी-कभी परागति ही देखने को मिलती है। गाँधीजी की बाह्य और अन्दरूनी दोनो प्रगति नजर के सामने प्रत्यक्ष थी और आश्चर्य की बात यह है कि उन के चेहरे मे भी बहुत जल्दी फर्क पडता जाता था। समय-समय पर लिये गये उन के फोटोग्राफो की तुलना करने से आज हम देख सकते है कि उन के चेहरे मे कितना फर्क पडता गया। मामूली लौकिक आदमी अगर उत्कटता से साधना करे, तो वह एक ही जीवन मे लोकोत्तर भूमिका तक पहुॅच सकता है, जिसका गॉधी जी से बढकर दूसरा उदाहरण नही मिल सकता।

गांधीजी के जीवन-सिद्धान्त

हमारे जमाने मे जिन लोगो ने भारत की और दुनिया की सबसे अच्छी सेवा की उनमे स्वामी विवेकानन्द, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और योगी अरविन्द धोष के साथ महात्मा गाधी का नाम लिया जाता है। अिन चारो ने भारतीय सस्कृति का उज्ज्वल रूप दुनिया के सामने प्रगट किया।

श्री मोहनदास करमचद गाँधी पहले-पहले कर्मवीर के तौर पर मशहूर थे। बाद मे भारत की जनता ने देखा कि इस धर्मप्राण मानव-सेवक को महात्मा ही कहना चाहिये। आज सारी दुनिया इन्हे महात्मा गाधी के नाम से पहचानती है। लेकिन जो लोग गाधीजी के निकट परिचय मे आये—और ऐसो की सख्या और योग्यता कम नही है—वे सब गाधी जी को 'बापू' या बापूजी के नाम से ही पहचानते,है। बापू के मानी है पिताजी। गाधीजी के हृदय मे सब के प्रति पिता का प्रेम और वात्सल्य था। आज भारत के लोग गाधीजी को महात्मा भी कहते हैं और राष्ट्र पिता भी कहते है।

अिन के जीवन-सिद्धान्त बिलकुल सादे, सरल और सार्वभौम थे। इन सब सिद्धान्तो को तीन शब्दो मे हम ला सकते है। एक है सर्वोदय, दूसरा है सत्याग्रह, और तीसरा है अनासक्ति।

गाधीजी अपने जमाने के, अपने युग के लोगो मे अधिक-से-अधिक धर्मनिष्ठ थे। इसलिये हम उन्हे युगपुरुष भी कहते है। उनके मन मे समस्त मानवजाति के प्रति एक-सा प्रेम था। सब की सेवा करना, सबको उन्नति

का रास्ता दिखाना और सबके दिल मे भलाई पैदा करना या बढाना, यही था उनका जीवन कार्य ।

हम देखते है कि शुरू से ही ईश्वर को याद कर के चलने वाले वे भक्त पुरुष थे ।

अपना सारा जीवन उन्हो ने भगवान के चरणो मे अर्पण किया था । भगवान जो काम उनके सामने लाता था, उसी को अपना तन-मन-धन अर्पण करके वे करते थे ।

बचपन से ही उनका सारा प्रयत्न सत्य के रास्ते चलने का था । वे कहते थे, "सत्य ही ईश्वर है । भगवान के नाम अनन्त हैं । उनमे से एक नाम है, सत्य । वही मुझे सबसे प्यारा है ।"

गाधीजी सत्य के लिये ही जिये । सत्य का ही उन्होने आग्रह रखा । सत्य के द्वारा ही उन्होने लोगो की सेवा की । और इसी सत्य के लिये ही उन्होने अपने प्राण अर्पण किये । वे शहीद हुये ।

सत्य का पालन करते अुन्हे अनुभव हुआ कि दूसरो को दबाने से, दूसरो की हिसा करने से या किसी को मारने से हम सत्य को पा नही सकते । उल्टा, उस रास्ते चलते, हम सत्य से दूर-दूर हो जाते है । इसलिये उन्हो ने सत्य के साथ अहिसा को भी अपना जीवन-सिद्धान्त बना लिया ।

उनके मन मे गरीब, अनाथ, असहाय, दबे हुये लोगो के प्रति अपार करुणा थी । उन्ही की सेवा करने मे उनको सतोष और आनन्द मिलता था ।

गरीबो की, अपाहिजो की और अनाथो की सेवा करते उन्होने देखा कि उन्ही को हमेशा अन्याय, अत्याचार, अपमान और शोषण का शिकार बनना पडता है । यह सब देखकर गाधीजी ने अन्याय का इलाज करने का रास्ता ढूँढ निकाला ।

गरीबो का दुख समझने के लिये और स्वय महसूस करने के लिये

उन्हो ने गरीबो के जैसी सादगीसे रहना पसन्द किया । गरीबो की कठि-नाइयो का अनुभव करते, उनको अपमान सहन करना पडा कठिनाइयाँ उठानी पडी । सब तरह के अन्यायो का और अत्याचारो का अनुभव करना पडा कई बार उनको मार भी सहन करनी पडी ।

इसी मे से गाधीजी का लडायक क्षात्र जाग्रत हुआ ।

उन्होने देखा कि किसी को मारकर, किसी का नुकसान कर, हम बडे नही बनते । लेकिन जुल्म करने वाले के जुल्म की शरण न जाते हुये, उनका अहिसक मुकाबला करना, और उससे स्वय बडा बनना यही सच्चा और अच्छा तरीका है । अन्याय सहन करने की अपेक्षा कष्ट सहन करना और सिर ऊँचा रखना, यही है इज्जत का रास्ता । और गाधीजी ने देखा कि यही है विजय पाने का और धर्मपालन करने का उत्तम रास्ता ।

गाधीजी कहते थे कि दुनिया मे दो शक्तियाँ है। अेक है शरीर की जड पशुशक्ति और दूसरी है आत्मा की गैबी शक्ति जिसे वे कहते थे आत्मशक्ति । छोटे और बडे, पडित और अनपढ, गरीब और धनिक, स्त्री-पुरुष, सब कोई प्रयत्न करने से, इस आत्मशक्ति को पहचान सकते है, बढा सकते है, और काम मे ला सकते है । ऐसी आत्मशक्ति जिसके पास है,वहीसव तरह से अपना मालिक है कोई उसे दबा नही सकता, ओर घोर से-घोर अन्याय का भी, वह सफलतापूर्वक प्रतिकार कर सकता है ।

मनुष्य जब अपने शरीर का ही विचार करता है, शरीर-सुख का लालायित बनता है, तब उसमे सब तरह की कमजोरी आ जाती है । वह अपनी शान खोता है और सब तरह से छोटा बनता है इसलिये गाधीजी ने तय किया कि मनुष्य सयम करे, खाने पीने का लालची न बने । भोग विलास के पीछे पागल न बने । इतना किया तो मनुष्य अपनी सब कम-जोरियाँ दूर कर सकता है । फिर उसमे अन्याय का प्रतिकार करने की और उच्च जीवन स्थापन करने की शक्ति आ सकती है ।

दुनिया मे केवल भारत ही नही, जितने भी पराधीन देश थे, पराधीन

दबी हुई जातियाँ थी उन सबके प्रति गाधीजी के मन मे सहानुभूति थी। वे उन्हे स्वावलम्बन और स्वमान रक्षा का रास्ता बताते थे। सामाजिक क्षेत्र मे हो, आर्थिक क्षेत्रो मे हो या राजनैतिक क्षेत्र मे, गाधीजी दबे हुये लोगो का पक्षपात करते थे। लेकिन उन्होने कभी नही सोचा कि धनी और गरीब के बीच हमेशा संघर्षही चालू रहे। एकओर वे गरीबो को स्वावलम्बन की दीक्षा देते थे, और दूसरी ओर वे धनी और सामर्थ्यशाली लोगो मे मान वता और बन्धुता के बीज बोते थे, ताकि अमीर-गरीब का सघर्ष दूर हो कर दोनो मे पारिवारिक सबध स्थापित हो जाय।

पश्चिम के राष्ट्रो ने जो प्रगति की है उसकी कदर करते हुये, वे कभी भी पश्चिम की यत्रोद्योग की प्रगति से चकित नही हुअे थे। वे कहते थे, इस यान्त्रिक सुधार से चन्द लोगो की शक्ति होगी, सुख के साधन बढे होगे, लेकिन उनके हृदय की उदारता, उससे तनिक भी बढी नही है।

यत्रोद्योग और तिजारत बढने से मनुष्य का लोभ बढा है। और धनी लोग अपने सगठन-चातुर्य से गरीबो का शोषण करते निर्दय बनते जा रहे हैं।

यह नही कि धनी लोग कभी किसी का भला नही करते। लेकिन गाधीजी कहते थे कि उनका तरीका 'निहायी' या 'आहरन' की चोरी करके एक सूई का दान करने के बराबर है।

वे चाहते थे कि देश की उन्नति का प्रारम्भ गरीबो से होना चाहिये। गरीबो को पेट-भर रोटी मिले, दूध-घी मिले, पूरा कपडा मिले, रहने के लिये साफ-सुथरे मकान मिले, उनके बच्चो को सच्ची शिक्षा मिले और किसी को भी बेकार रहना न पडे, इतना सबसे पहले करना चाहिये। इसी को वे सर्वोदय कहते थे। सर्वोदय का प्रारम्भ सबसे नीचे के लोगो से करने के तरीको को अत्योदय कहते है।

हमारे देश मे भगवान की योजना से सब धर्म आकर बसे है। सब धर्मों के पीछे ईश्वर की प्रेरणा है। सब धर्म मनुष्यो को ईश्वर की ओर बुलाते है। इसलिये हमारे मन मे सब धर्मो की ओर एक-सा आदर रहना चाहिये। जब सब धर्म इस देश मे आकर बसे है और हमारे लोगो ने उनको अपनाया है तब हमारा कर्तव्य है कि हम सब धर्मो का एक परिवार बनावे, एक कुटुम्ब बनावे। धर्मो के नाम झगडा करना धर्मो का और भगवान का अपमान ही करना है। मनुष्य अपने-अपने धर्मो का पालन करते हुए सब धर्मो के प्रति अपने मन मे आदर भाव रखे। असली बात है धार्मिकता की, जो सब धर्मो मे कमोबेश, लेकिन एक-सी पाई जाती है।

ये थे गाधीजी के सिद्धान्त। जिन का दिल बडा है वे ये सिद्धान्त आसानी से समझ सकते है। असली बात हे उनके अनुसार चलने की। गाधीजी ने इन सिद्धान्तो का बडी निष्ठा से पालन किया इसीलिये दुनिया उनसे ये बाते ले सकी। और दुनिया अब देख रही है कि अगर विनाश से बचना है, तो गाँधीजी के रास्ते ही होगा। जल्दी समझ लेगे, तो सबका भला होगा। नही तो गलतियाँ करके, अपना और दूसरो का नुकसान करके ये बाते सीखनी ही पडेगी।

गांधीवाद नहीं, गांधी साधना

यह समझ मे नही आता कि 'गाधीवाद' शब्द कैसे प्रचलित होता जा रहा है। खुद गाधीजी हमेशा कहा करते थे कि 'गाधीवाद' जैसी कोई चीज ही नही है ! गाधीजी के विचारो को और कार्यक्रम को 'गाधीवाद' नाम नही दिया जा सकता। उसे चाहे तो 'गाधी-मत' कहिये, या 'गाधी-जी की जीवन-दृष्टि' कहिये। गाधी के विचार कोई 'वाद' नही है, किंतु तमाम वादो मे आसानी से मिलाया जाय के ऐसा वह एक खमीर या लीवन Leaven—है। यह खमीर जहाँ कही पहुँचता है वहा उस वाद का बाह्य स्वरूप कायम रहते हुये भी अन्दर से सारी चीज बदल जाती है। दूध मे थोडा जामन मिला दीजिये और उसे एक ओर रख दीजिये। सुबह तक दूध, दूध नही रहेगा, उस का दही बनेगा। मूँगफली का या सोयाबीन का दूध बनाइये और उस मे जामन मिला दीजिये, तो उस का भी दही बनेगा। फिर भी हम तो फौरन पहचान लेंगे कि एक है दूध का दही दूसरा मूगफली का और तीसरा सोयाबीन का। लोग जिसे गाधीवाद कहते है वह वाकई एक तरह का खमीर है, जामन है, और उसे वैसा ही मानना चाहिये।

दूसरी मिसाल दूँगा। चीनी खुद कोई पक्वान्न नही है। वह तो महज स्वाद ही है। किसी भी पक्वान्न मे उसे डाल दीजिये। उन पक्वान्नो का स्वरूप कायम रखकर भी वह उन्हे अपना स्वाद अर्पण करेगी। उन्हे विशेष पौष्टिक बनायेगी, और उन के अच्छे तत्वो को कायम रखने मे मदद करेगी। इसी तरह गाधीवाद कोई 'वाद' नही है, किन्तु वादो का अजीब स्वाद है।

पारस को लीजिये। उस के सामने लोहे की छुरी रखिये, भाला

रखिये या तेग रखिये । पारस का स्पर्श होते ही लोहे का सोना बनेगा । आकार भले वही रहे किन्तु अब उस चीज की कीमत बदली और नाम-रूप कायम रखकर भी वह अब घातक काम नही कर सकेगी ।

यह सब मैने विस्तार से इसलिए कहा कि गाधी-मत के बारे मे जो कई गलतफहमियाँ फैली हुई है उन्हे दूर करने की मै जरूरत महसूस करता हूँ । लोगो का ख्याल है कि गाधी-मत पूँजीवाद का समर्थन करता है और खानगी मिल्कियत का रक्षण करना चाहता है, समाजवाद या साम्यवाद से उसका विरोध है । लोगो का यह ख्याल गलत है । अपरि-ग्रह रखने-वाला गाधीमत पूँजीवाद या खानगी मिल्कियत की कल्पना का भला कैसे समर्थन करेगा ? आज देश मे—और ज्यादातर दुनिया मे —खानगी मिल्कियत की व्यवस्था या सस्था दृढमूल हुई मालूम होती है । गाधी-मत उस को स्वीकार कर के उस मे अपना जामन मिलाना चाहता है ।

अगर हमारे देशमे राज्य-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था समाजवादी —Socialistic होती तो गाधीजी उस को भी स्वीकार कर लेते और उस मे अपना जामन मिलाकर उस के द्वारा अपना इच्छित फल पा लेते । समाजवाद को तोडने की वे कभी कोशिश न करते, किन्तु उस को अहिंसा की दीक्षा दे कर उसी मे अद्भुत फरक कर डालते । और अगर हिन्दुस्तान मे साम्यवाद चलता तो भी उस के खिलाफ बगावत न कर के उस को स्वीकार कर लेते और उस को सत्य और अहिंसा की दीक्षा देते । गाधीजीकी साधन शुद्धि को आप स्वीकार कीजिये, सर्वकल्याणकारी जीवन-दृष्टि से दुनिया की तरफ देखने लग जाइए, फिर चाहे कोई भी 'वाद' आप चलाइये । उस से शुभ ही निकलेगा । 'गाँधीझम' कोई 'इझम' (वाद) तो नही है, फिर भी उस को कोई 'इझम' के तौर पर मानना ही है तो वह सोशियालिझम या कम्यूनिझम के जैसा महज आर्थिक 'इझम' नही है । बल्कि 'बुद्धिझम' या 'जैनीझम' जैसे विशाल,

व्यापक और सार्वभौम धार्मिक 'इज्म' की पक्ति मे आप को उसे बिठाना पडेगा , गाधीजी ने आज के ससार की आर्थिक परेशानियो को पहचाना है, उन का महत्त्व समझ लिया है। और उन आर्थिक सवालो का हल भी उन्हो ने बेहतरीन ढग से सुझाया है। समाज मे अर्थशुचिता (आर्थिक या सपत्तिक बातो मे समाज को निष्पाप बनाने का आग्रह) लाने का उनका आग्रह समाजवाद या साम्यवाद से भी अधिक है। फिर भी गाधी-मत कोई अर्थप्रधान मत नही है। वह जीवन के सब पहलुओ पर सोचता है और जीवन के स्थायी सनातन मूल्यो को स्वीकार कर के समस्त जीवन को कृतार्थ करता है।

गाधीमत की बुनियाद मे मुख्य वस्तु है आत्मा की प्रधानता। मनुष्य का जीवन आज तो शरीर और आत्मा का 'विषम ससार' है। आत्मा शरीर मे रहकर शरीर के द्वारा अपना साक्षात्कार करना चाहती है, और शरीर आत्मा की वजह से कायम रहकर भी आत्मा का इकार कर के उसे नीचे खीचना चाहता है। ऐसी हालत मे शरीर धर्म और आत्मा का धर्म इन दोनो के बीच के विरोध को पहचानकर आत्मा को प्रधान-पद देना और शरीर को साधना के द्वारा काबू मे लाकर उसे आत्मा के वशवर्ती बनाना, यही गाधीजी की साधना का मुख्य स्वरूप है। और इस साधना की कल्पना महज व्यक्ति के लिये या व्यक्ति के मोक्ष के लिए नही, बल्कि व्यक्ति के साथ समष्टि याने समाज के लिये की गई है। शरीर आत्मा को बधन मे डालनेवाला पिंजरा भी है और उस आत्मा के लिए अपनी साधना करने का साधन भी है। शरीर को यदि हम अपने ढग से चलने देगे तो वह इन्द्रिय-तृप्ति की ओर दौडेगा और आखिर विनाश का शिकार होगा। वासनातृप्ति के मृगजल के साथ स्वार्थ, हिंसा, असत्य, कपट सकुचितता और चिरतन असतोष आने ही वाले है। ये दोष बढने से ही मनुष्य, मनुष्य का द्रोह करता है, दूसरो की आजादी को छीनकर साम्राज्य चलाता है, खुद आलसी बनकर

दूसरो की मेहनत का अनुचित फायदा उठता है। और अनपढ पिछडी या भोली जनता को चूसता है।

अव दबी हुई जनता हमेशा के लिए दबी हई रहनेवाली नही है। वह जब जाग्रत होती है तब पुराने अन्यायो को याद करके विफरती है और आज के गुलाम कल के जालिम बनते है। यह चाडाल-चक्र एक बार शुरू होने के बाद वह मानव जाति का विनाश किये बगैर नही रुकता।

भगवान् बुद्ध ने जो कहा था कि "वैर से वैर का शमन नही होता, अवैर से ही वैर का शमन होता है," उसका उपयोग राष्ट्र-राष्ट्र के बीच के झगडो मे कैसे किया जाय यह तो गाँधीजी ने बताया है।

वैर के यदि खिलाफ रहेगे तो खुद जहर का अवलबन कर के हिंसा करनी और अगर अवैर का अवलबर करेंगे तो सामना करना छोडकर अन्याय को सह सके इतने दब्बू बनना पडेगा।

औसा मसीह ने तो कहा ही था कि "अगर कोओी तुम्हारा कुर्ता छीनता हो तो अुसे अपना कोट भी दे दो—अगर तुम्हे कोओी खीच कर अेक मजिल घसीटते हुये ले जाय तो अुसके साथ खुशी से दो मजिल तक जाने के लिये तैयार रहो—कोओ तुम्हारे बाये गाल पर चपत जमा दे तो अुसके सामने अपना दायाँ गाल भी कर दो।"

किन्तु अितने भर से जीवन के मसले हल नही होते। गाधीजी ने अेक अैसे रास्ते की खोज की, जिस मे वैर के सामने वैर का अवलबन भी नही होता, न अन्याय सहा जाता है। अुन्होने कहा कि "अगर तुम्हरे दायें गालपरकोओी चपत जमाये तो अुसके सामने बायाँ गाल भी कर देना" और यह मिला दिया कि "दोनो गालो पर चपत मिलने के बाद सच को न छोडना।" शरीर को भले सहना पडे किन्तु आत्मा का अपमान सहा नही जा सकता। सामने का आदमी शरीर को पीडा पहुँचाकर हमे दबाना चाहता है तो हम अुसे यह दिखा दें कि पीडा पहुँचाने की अुस की ताकत

की अपेक्षा अपनी सहने की शक्ति बढाने के लिये हम तैयार हैं। नतीजा यह होता है कि हमारी जीत होती है, सामने के आदमी की नही; मगर असकी दुष्टता की हार होती है। और चूँकि हम ने असका कोअी बुरा नही किया अिसलिअे असुसे दोस्ती सधने मे हमे हिचकिचाहट मालूम नही होती। अिस तरह वैमनस्य और विनाश के बदले दोनो अुन्नति करते है।

यह है गाधीमत का प्रतिकारात्मक पहलू। दूसरा पहलू है रचनात्मक। अिस मे हर समाज को अपनी न्यायनिष्ठा को बढाने के लिये जरुरी वायु-मडल पैदा करना पडता है। घर बैठे हुए समाज के दोषो को दूर करना, अन्याय करने की प्रवृत्ति को धो डालना, आलस्य, अेकागिता और सकुचितता को दूर करना, कौशल्य, स्वाश्रय और परस्पर सेवा और सहकार बढाना, आदि हेतु रचनात्मक काम के पीछे रहते है। रचनात्मक कार्यक्रम का मतलब है सामाजिक सद्गुणो की वृद्धि करने की प्रवृत्ति, राष्ट्रनिर्माण की योजना, या सजीवनी विद्या। अिसी के द्वारा सत्ययुग मे व्यक्ति के अधिकारो की वृद्धि करने के पहले, और व्यक्ति स्वातत्र्य की रक्षा के पहले व्यक्ति की शुद्धि करनी पडती है। व्यक्ति स्वातत्र्य के आधार पर ही समाजहित और समाज की समृद्धि को सधना चाहिए।

आजकल असमानता के खिलाफ सभी जगह पर जेहाद का नारा लगाया जाता है। असमानता बुरी चीज है। अुसकी जड मे अन्याय रहता है। अुसे तो खत्म ही करना चाहिअे। किन्तु अुसके बदले मे समानता की स्थापना कर के गाधीवाद को सतोष नही मिलता। असमानता अगर सघर्षकी याने युद्ध की भूमि है तो समानता बाजारू सबधोवाली भूमिका है। हम चाहते है कौटुबिक भूमिका की अेकता, जहाँ असमानता न रहे, न समानता के लिअे रोज झगडे होते रहे।

आदमी जब मौज-शौक का, सपत्ति का या अधिकार का लोभ या

मोह छोड देगा तभी वह आजाद होगा। सच्ची आजादी आत्मा की है। मगर अुसके बदले शराब पीने की आजादी, दूसरो को चूसने की आजादी, चूसकर कमाया हुआ धन अपना बनाकर रखने की आजादी, दूसरो को भूखे रखकर, अपने आपको हानी हो तबतक भोग भोगने की आजादी आदि के पीछे आज की दुनिया दौड रही है। और अिस तरह की आजादी को तोडने के वास्ते समाजवाद और साम्यवाद हर तरह के हिंसक साधन अिस्तेमाल करने की सिफारिश कर रहे है। अिस चाडाल-चक्र मे से—vicious circle मेसे—मानवजाति को मुक्त करने का रास्ता गाधीजी दिखाते हैं कि —

जिस तरह भूख से ज्यादा नही खाना चाहिये उसी तरह आवश्यकता से अधिक धन का सेवन नही करना चाहिये, सग्रह नही करना चाहिये इस नियम का पालन समाज को करना चाहिये। अिसी को वे अस्तेय और अपरिग्रह कहते हैं। अिन दोनो मे समाजवाद और साम्यवाद के आदर्शों का समावेश हो जाता है।

सार्वजनिक जीवन की शुद्धता कायम रहे और वह टूट न पाये अिस वास्ते उन्हो ने सत्य के आग्रह को राजनैतिक क्षेत्र मे भी दाखिल किया। मनुष्य-मनुष्य के बीच की बधुता कायम रहे अिस वास्ते व्यक्तिगत तथा सामाजिक, धार्मिक और राजकीय क्षेत्रो मे अुन्हो ने अहिंसा का व्याकरण चलाया।

जबतक स्वराज्य नही मिला था तबतक तो अुन्होने सिर्फ सत्य और अहिंसापर ही जोर दिया। फिर स्वराज्य हासिल होने के बाद, आर्थिक जीवन मे घुसी हुअी विषमता को दूर करने के लिअे अुन्होने अपरिग्रह की—याने आवश्यकता से ज़्यादा धनका सग्रह न करने की तरफ समाज को ले जाने की कोशिश की। अुसको वे 'ट्रस्टीशीप' का सिद्धान्त कहते थे। धनवान धन को अपना न माने बल्कि भगवान का याने

समाज का माने और कमाने वाला अपने को असका 'ट्रटी' माने तो असका जीवन अर्थशुचि होगा।

आदमी यदि अपनी आवश्यकताओ को हद से ज्यादा बढा दे तो वह अेक तरह की चोरी ही मानी जायगी। वह सामाजिक अपराध तो है ही। अैशआराम और भोग-विलासो की वृद्धि करने से मनुष्य अपनी शारीरिक, बौद्धिक, हार्दिक और आत्मिक शक्ति को खो बैठता है। सब तरह से क्षीण होते भोग भोगने की असकी शक्ति भी क्षीण होती है। है। धन कमाने की और समाज सेवा करने की योग्यता भी नष्ट होती है। यह मनुष्य का अपने प्रति गुनाह है।

मनुष्य को यदि अपने प्रति गुनाह करना न हो तो हर चीज मे असे सयम का पालन करना चाहिअे। अिस सयम के लिअे ॠषिमुनियो ने अेक सुन्दर नाम दिया है—ब्रह्मचर्य। अिस शब्द की निरोगिता, सुन्दरता, और भव्यता को लोग खो बैठे है। और असका बहुत ही सकीण अर्थ करते है।

अूपर के सदगुण आदमी तभी कमायेगा जब वह श्रमशाठ्यकरना छोड देगा। श्रमशाठ्य याने कामचोरी, जिसे देहात के लोग 'हड्डिओ की हरामी, कहते है। सभी पापो का मूल वही है और कमजोरी का भी मूल वही है। जब यह दोष जायगा तब मनुष्य आसानी से निर्भय होगा और असे अपना स्वाभाविक धर्म आसानी से सूझेगा।

मनुष्य यदि जैसा है वैसा ही रहना चाहता हो तो अुस का अेक भी सवाल हल नही होने का। वह भले समाज रचना बदलता रहे, सपत्ति का विभाजन भले आदर्श ढग से करे, अच्छे-अच्छे कानून बनावे और धर्मोप-देशको की नियुक्ति करे, फिर भी, जबतक वह अपना स्वभाव नही बदलता और अुच्च जीवन पसद नही करता तबतक वह दु खी ही रहेगा। कअी पुराने सतो ने समाज को छोडकर अेकान्त सेवन का रास्ता अपनाया। जीवन की विषमता से अकुलाकर वे जीवन-विमुख बने और अेकान्त मे अेकान्त

की—शून्य की—अुपासना करने लगे। गाधीजी ने देखा कि यह रास्ता गलत है अितना ही नही बल्कि अिसके पीछे स्वार्थ और नास्तिकता है, हमारे भाअी हमारे साथी और पडोसी हम ही है। अुनके दोष हमारे दोष अुनके अुद्धार के बिना हमारा अुद्धार असभव है।अपनी साधना मे तमाम मानव-जाति को शामिल करना चाहिअे। गाधीजी ने यह देखा और अपनी साधना चलाअी। "मेरा धर्म तो मेरा है ही। किन्तु मेरे पडोसी जिस धर्म का पालन करते है वह भी मेरा ही है - अुसको भी मुझे स्वीकार करना चाहिअे।।" अिस तरह की जीवनव्यापी विश्वात्मैक्य-बुद्धि के आधार पर गाधीजी ने अपनी सावना विकसित की। और अुसी को दुनिया के सामने रक्खा। अुस को कोअी 'वाद' नही कहा जा सकता। गाधीजी ने तो सपूर्ण जीवन को स्वीकार किया और अुस विश्वजीवन के अुद्धार की सार्वभौम साधना को विकसित किया। अुसे कोअी 'वाद' कहने के वदले, गाधी साधना कहिअे। या सजीवनी साधना कहिअे अुसके सामने मब' वाद' अेकागी, फीके और अदूर दृष्टि मालूम होते है। यह गाधीसाधना सारी दुनिया को, कुछ नही तो हजारो सालतक करनी होगी।तभी मानवके सामने का विनाश टलेगा।

गांधी-युग तो आयंदा शुरू होने का है

समय-समय पर गाधीजी ने व्याख्यान दिये, लेख लिखे, असख्य व्यक्तियो को हजारो खत लिखे, अनेक सस्थाओ से बातचीत करते सार्वजनिक जीवन के कल्याणकारी सिद्धान्त समझाये और जब-जब अुन की मदद मागी गअी, अुन्हो ने सब सस्थाओ के लिअे प्रस्तावो के मसौदे की शब्दावली भी तैयार करके दी। अिस तरह राष्ट्र के लोगो को और सेवको को वे तैयार करते गये। अपने जमाने के सब सवालो के हल भी राष्ट्र के सामने रखते गये। गाधीजी कर्मवीर थे अिस वास्ते अुन्हो ने जो कुछ कहा अथवा लिखा, केवल अुस अुस समय के काम की सफलता के लिअे था।

अैसा करते अुन्हो ने अपने जीवन-सिद्धान्त भी लोगो के सामने रख दिये, जिन का सार हम चार शब्दो मे दे सकते है, सत्य, अहिसा, सयम और सेवा।

अिस तरह के अपने कार्य के सदर्भ मे अुन्हो ने जो साहित्य दिया अुस के अलावा अुन्हो ने अनेक सस्थाअे चलाअी, अनेक सस्थाओ का मार्गदर्शन किया, देश के अुत्तमोत्तम सेवको को प्रभावित किया, राष्ट्रीय जीवन मे प्राणपूर्ण नवजीवन खडा किया और फलस्वरूप अहिसक प्रतिकार के द्वारा भारत को आजाद किया। आज कृतज्ञ राष्ट्र अुनको 'राष्ट्रपिता' कहता है।

लेकिन गाधीजी के कार्यकाल मे अैसे भी लोग थे, जो अग्रेजो का राज्य कायम करने के पक्ष मे थे। अैसे भी शिक्षक, प्रोफेसर और शिक्षाशास्त्री थे, जिन का राष्ट्रीय जागृति के साथ कोअी सबन्ध नही था। अैसे भी धर्माभिमानी हिदू, मुस्लिम, अीसाअी, आदि लोग थे,

जिन्हो ने भारतीय राष्ट्रीयता का विरोध किया और अपना अुल्लू सीधा करने के लिअे अपने-अपने गुट का नेतृत्व किया। राष्ट्रीय दुर्गुणो के प्रतिनिधि हरएक देश मे और हरअेक जमाने मे होते ही हैं। (अैसे दुर्गुणो की फेहरिस्त कौन कर सकता है ?) केवल व्यक्तिगत दुर्गुणो की बात हम यहा नही कर रहे है। हम राष्ट्रीय दुर्गुणो का यहा जिक्र कर रहे है, जिन की बदौलत सदियो तक हम गुलाम रहे और हमारी अेकता भी हमेशा खडित रही थी।

गाधीजी के नैतिक तेज के सामने 'दुर्गुणो के ये प्रतिनिधि' दब गये। और अुन्हो ने देखा कि सिर अूँचा करने का यह समय नही है। अैसे लोग जानते है कि सत्ययुग हमेशा के लिअे कायम नही रहता। अगीठी चाहे जितनी गरम हो और अुस की भभकती ज्वालाये, गर्मी और प्रकाश भी देती हो, यथाममय ठडी होनेवाली है। आज जिन्हे दबकर रहना पडा है, कल सिर अूचा कर सकेंगे, समाज को बहका सकेंगे। जिन दुर्गुणों को अनेक जमाने मे पोषण मिला है वे बीस-तीस वर्ष के सत्ययुग से नष्ट होनेवाले नही। जो राष्ट्रीय दोष, राष्ट्रीय कमजोरियाँ और राष्ट्रीय अधापा कलियुग के नाम से पनप रहा था, फिर अपने अधिकार प्रस्थापित करेगा ही।

स्वराज्य मिला। देश के पुराने अनुभवी नेता स्वराज्य चलाने के अुत्साह मे राष्ट्रीय दोष और राष्ट्रीय कमजोरियाँ भूल गये और औद्योगिक तथा शैक्षणिक प्रगति की योजनाअे सरकार द्वारा सिद्ध करने की कोशिश मे लग गये।

अिधर जिन लोगो को स्वराज्य-प्राप्ति के लिअे बलिदान करना नही पडा था और जिन लोगो ने राष्ट्रीय विकास के लिअे, राष्ट्रीय सद्गुणों की अुपासना भी कभी नही की थी और जो लोग स्वराज्य-प्राप्त के दिनों मे अप्रतिष्ठित थे, अब सिर अूचा कर के कहने लगे है "गांधीजी महात्मा थे, धर्मात्मा थे सही, किन्तु अुन का जमाना अब खतम हुआ है। गाधी-

जी का अुपवास, गाधीजी का सत्याग्रह, गाधीजी के समझौते अब अिस जमाने मे कोअी काम के नही है। अुपवास का और सत्याग्रह का कैसा दुरुपयोग हो रहा है सो तो आप देखते ही है । गाधी भले ही महात्मा हो अुन का मानस दकियानूस था । अुन का मार्ग, अुन के अिलाज, आप के-हमारे अिस जमाने के लिअे काम के नही है । अपने जमाने मे अुन्हो ने अच्छा काम किया । अुन के प्रति हम कृतज्ञ रहेगे । अुन के स्मारक बनायेगे । अितिहास मे अुन के नाम का जिक्र आदर से करेगे किन्तु अुन के रास्ते जाने की, अुन के सिद्धान्त के अनुसार चलने की बात हम सोच नही सकते ।'' दुःख की बात तो यह है कि अैसे लोगो ने गाधीजी का साहित्य देखा भी नही होता । आजकल राजनैतिक अधिकार हथियाने की होड मे मतलबी लोग गाधीजी का नाम लेते है, गाधीजी के सिद्धान्त समझाते है अुतने पर से लोगो को जो जानकारी मिलती है अुसी को प्रमाण मानकर अुतावले लोग गाधीजी की कीमत तय कर रहे है और आज के जमाने के लोकमानस की कसौटी पर गाधीजी को कसकर जाहिर करते है कि 'आज का जमाना गाधीजी का स्वीकार करने के लिअे तैयार नही है' ।

अिस तरह सोचनेवाले लोगो की सख्या कम नही । वे अपने विचारो का प्रचार सभा मे खडे होकर नही करेगे, लेख नही लिखेगे किन्तु सभाषणो मे जगह-जगह यही बात चलायेंगे । गाँधी-जन्म-शताब्दी के कारण जो गाधी-साहित्य तैयार हो रहा है अुस मे अिन लोगो के प्रचार को तोडने के लिअे कुछ भी लिखा नही जा रहा है । भले लोग या तो गाधीजी के शब्द अिकट्ठा करके जनता के सामने रखते है, अथवा गाधीजी कैसे बडे थे अिसका जिक्र करके 'माहात्म्य' लिखते हैं । दोनो के प्रचार अपने ढग से चलता आ रहा है । सब से बडी बात तो यह है कि दोनो पक्ष अिस बात को स्वीकार करते हैं कि गाधीयुग खत्म हुआ है । अब तो अुस का श्राद्ध करने का ही बाकी है ।

अैसे लोगो को मै कहता हूँ कि गाधीयुग का—सच्चे गाधीयुग का अभी प्रारभ ही नही हुआ है। जिस काल मे गाधीजी का जन्म हुआ और जिस युग मे गाधीजी ने देहावसान तक अपना जीवन-कार्य चलाया वह युग सचमुच गाधीयुग नही था। अुसे तो 'युद्ध-युग' ही कहना चाहिअे। गाँधीजी का जन्म युद्ध-युग मे हुआ था। अुन्होने अपने जीवन-काल मे युद्ध-युग बढता हुआ देखा। अेक नही दो-तीन युद्ध अुन्हो ने देखे। आखरी दिनो मे अुन्हो ने युद्ध की पराकाष्ठा भी देखी और अैसे भयानक युद्ध-युग मे अुन्हो ने अपने नये युग का बीज बोया। दक्षिण आफ्रिका गाधीजी की प्रयोग-भूमि थी। अग्रेजी मे जिसे नर्सरी (पौधाघर) कहते है वैसा वह स्थान था। वहा पर सत्याग्रह का बीज तैयार हुआ। अुसे लेकर गाधीजी जब भारत आये तब तो केवल यूरोप मे ही नही सारी दुनिया मे युद्ध का दावानल भभक रहा था। गाधीजी जब भारत मे सत्याग्रह का बीज बोते थे तब अग्रेजी साम्राज्य यूरोप के रावण, हिटलर को खतम करने की कोशिश मे था।

अब युद्ध-युग के सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र अमेरिका, रशिया आदि जागतिक युद्ध के लिअे आणविक अस्त्र तैयार कर रहे है सही, किन्तु, अुन का युद्धो पर का विश्वास अुड गया है। वे जानते है कि अब अगर वे युद्ध मे अुतरे तो वह विजय के लिअे नही जागतिक सर्वनाश के लिअे ही अुन्हें अुतरना होगा। अिसीलिअे सारी दुनिया काप रही है, खोज रही है कि आत्मरक्षा के लिअे, स्वतत्रता, समता और बधुता की रक्षा के लिअे, कौन-सा अुपाय है ? हिसा की भयानक कला मे जो सब से अधिक प्रवीण है अुन्ही का विश्वास हिंसा मे नही रहा। अुन्हो ने गाधीजी के 'अहिंसक युद्ध' का अेक प्रयोग देखा, तो भी अुनका विश्वास नही बैठता कि मानव-जाति सत्याग्रह के लिअे तैयार हो सकती है। अुन को यह भी विश्वास नही हो रहा है कि सत्याग्रह के द्वारा स्वतत्रता की, न्याय की और राष्ट्रीय-जीवन की रक्षा हो सकेगी।

गाधीजी के जाने के बाद गाधीजी के भारत ने बीम वर्ष मे न कोअी अहिंसा की साधना की है, न कोअी सत्याग्रह का युद्ध लड बताया है। भारत ने 'निर्वीर्य गृहकलह' का अेक नमूना ही दुनिया के सामने अिन बीस वर्षो मे पेश किया है। और अब अपने को सयाने समझने वाले लोग पूछ रहे है "जैसे हम है, हमे समझ-कर बताअिये, गाधीजी का मार्ग हमारे जमाने के लिअे कारगर है ?"

गाधीजी का बोया हुआ बीज अुन के दिनो मे अपना चमत्कार भले दिखा सका। लेकिन अुन के बाद अिस भूमि मे अुस को पोषण नही मिला अिसलिअे गाधीयुग का प्रारम्भ होते-होते रुक गया है। छोटे-छोटे राष्ट्र आज भी युद्ध छेडने की हिमत कर रहे है और बता रहे है कि युद्ध-युग अप्रतिष्ठित हुआ सही, लेकिन खतम नही हुआ है। बडे राष्ट्र युद्ध की तैयारिया भी कर रहे है और युद्ध टालने की कोशिशे भी कर रहे है। अिस परिस्थिति मे या तो अेक अतिम जागतिक युब्ध शुरू होगा अथवा गाधी-विचार का अुदय होकर सत्याग्रह जागतिक स्वरूप पकडेगा। अगर अैसा हुआ तो हम कह सकेगे कि गाधी-युग का सूर्योदय हो रहा है। (अगर भारत ने गाधीमार्ग का अनुसरण नही किया तो दूसरे किसी राष्ट्र को अथवा जाति को सत्याग्रह का प्रयोग आजमाना पडेगा। अगर भारत ने पचास लाख शान्ति सैनिको की फौज तैयार की होती और कम से कम आतरिक शाति और सुरक्षा की जिम्मेवारी अपने सिर पर ओढ ली होती तो दुनिया भारत पर नजर रख सकती और गाधी-युग का प्रारभ हुआ होता। हम कुछ करे ही नही, तो गाँधी-युग आप ही आप अुगनेवाला नहीं है।)

अब दुनिया की हालत ही अैसी हुअी है कि या तो गाधीयुग का अुदय होगा या जागतिक युद्ध फूट निकलकर मानव विश्वनाश के प्रयोग की ओर आगे बढेगा। हमे आशा है कि विश्व-विनाश होने के पहले ही मानव सचेत होगा और गाधीमार्ग का स्वीकार करके विनाश को टाल सकेगा। गाधीजी भूतकाल के प्रतिनिधि नही थे, भविष्य के प्रतिनिधि है। अुनका नाम लेनेवाले हम को चाहिअे कि हम शान्ति-सेना की तैयारी कर के गाधीयुग का आवाहन करे।

जवाहरलाल जी

मोतीलालजी जैसे मनस्वी और तेजस्वी पिता के लाडले जवाहर अपने पिता का आदर करते थे। अुन के सामने नम्र होते थे, लेकिन करते थे तो अपने मन का ही। आगे जाकर जब जवाहरलालजी ने देखा कि परिस्थिति पर अपना काफी प्रभाव जम गया है, तब पिता के वात्सल्य से लाभ अुठाकर पिता को अपने पीछे खीचने से भी वे बाज नही आये।

महात्मा गाधी तो युग-पुरुष थे। धर्मपरायण भारतीय जनता ने ही अुन्हे महात्मा की पदवी दी और धीरे-धीरे जनता ने अुन्हे अवतारी पुरुष मान लिया। महात्माजी को अपने काबू मे लाने का प्रयत्न ब्रिटिश नीति ने कम नही किया। लेकिन गाधीजी की दृढता के सामने उस का कुछ नही चला। गाधीजी के प्रभाव से डरकर अुन से मिलने का टालनेवाले लोर्ड विलिंग्डनको भी कहना पडा कि 'हारने पर भी यह आदमी किंकर्त्तव्य-मूढ नही होता। अपनी हार मे भी लाभ अुठाकर आगे ही बढता ज ता है।'

अैसे गाधीजी को अपनी निष्ठा अर्पण करके अुन का नेतृत्व स्वीकारते हुअे जवाहरलालजी ने अपना व्यक्तित्व कायम रखा, अितना ही नही, बहुत-सी बातो मैं गाधीजी को अपनी ओर वे खीच सके।

जवाहरलालजी समाज-सत्तावाद के प्रथम से पुरस्कर्ता थे। तो भी अुन्हो ने स्वातन्त्र्य के सेनानी गाधीजी का साथ छोडना पसन्द नही किया। अु हो ने अपने समाज-सत्तावादी साथिओ को साफ-साफ कहा, कि देश को आजादी की ओर ले जाने की शक्ति महात्मा गाधी की है। अिसलिअे अुन से अलग होने के लिअे वे बिलकुल तैयार नही है।

जवाहरलालजी ने गाधीजी का खादी का सन्देशा मन्जूर किया, यह कहकर कि "खादी हमारी आजादी की वर्दी है, गणवेश है। वे खादी पहनते थे, अितना ही नही, सूत कातना भी सीख गये।

अितना होते हुअे, न अुन्हो ने अपना समाजसत्तावाद छोडा और न बडे-बडे कल-कारखाने अिस देश मे खोलकर भारत को पश्चिमी राष्ट्रो की बराबरी का बनाने की नीति छोडी।

अगर गाधीजी से अुन्हो ने कोअी बात लेकर अुसे पूर्णतया अपनाया हो, तो यह केवल दो ही थी। (१) सब बाते गौण करके भारत को जल्द-से-जल्द स्वतन्त्र करने के लिअे परदेशी सत्ता के साथ प्राणप्रण से लडना, और (२) आज के युग मे शस्त्र-युद्ध विजयी बन नही सकता, विनाश की ओर ही ले जा सकता है, यह समझकर आन्तरराष्ट्रीय व्यवहार मे अहिसा को ही प्रधानता देना।

केवल अिन दो बातो मे ही वे गाधीजी के शिष्य अथवा अनुयायी थे। (३) अेक तीसरी बात भी यहाँ गिननी चाहिअे। धर्म, जाति, पथ, भाषा आदि किसी भी तत्त्व की सकुचितता मे न फँसते हुअे अखिल भारत को अपना अेक अखण्ड देश मानना और अुस की भावनात्मक अेकता सिद्ध करने के लिअे चाहे सो त्याग करने के लिअे स्वय तैयार रहना और देश को वैसी ही प्रेरणा देना। गाधीजी के मनमे और जवाहरलालजी के मनमे पाकिस्तान के प्रति तनिक भी द्वेष नही था। अेक ही घरके दो भाअी जब साथ नही रह सकते तब अपने चूल्हे अलग करते है सही। लेकिन भूलते नही कि हम अेक ही पिता के पुत्र है। चूल्हे अलग हुअे, धन दौलत का बँटवारा हुआ, लेकिन परिवार तो अेक ही है, यह हम कैसे भूले ? यह वृत्ति जैसी गाँधीजी मे थी, वैसी ही जवाहरलालजी मे थी। भारत के हो, या पाकिस्तान के हो, मुसलमानो के प्रति पक्षपात करने मे अुन्हे तनिक भी सकोच नही था। मुसलमान आदि भिन्न धर्मी लोगो को अपनाने का गाधीजी का और काग्रेस का व्रत जवाहरलालजी ने

अुतनी ही निष्ठा से अपनाया। अैसा करते अुन्हे अनेक बार ठेस लगी होगी, लेकिन अुन्हो ने अपना व्रत कभी नही छोडा। अिस बात मे भी जवाहरलालजी गाधीजी के पूरे-पूरे अनुयायी रहे। अुन के लिअे यह कठिन भी नही था। किसी के बारे मे मन मे द्वेष-भाव रखना, बदला लेना अथवा किसी की निन्दा करना जवाहरलालजी के स्वभाव मे था ही नही। वे अपने कार्य मे और अपने मिशन मे मस्त रहते थे और भले-बुरे सब तरह के लोगो से काम ले सकते थे। अैसी मन की अुदारता अुनके लिअे स्वाभाविक ही थी।

अग्रेजो ने जितना गाधीजी को परेशान किया अुतना ही जवाहरलालजी को भी किया। लेकिन अग्रेजो का अितिहास, अुस राष्ट्र का चारित्र्य और अुन लोगो का स्वभाव दोनो अच्छी तरह से जानते थे, अिसलिअे दोनो के मनमे अग्रेजो के प्रति आदरभाव और क्षमावृत्ति की अुदारता पूरी मात्रा मे थी। जिसको हम अच्छी तरह से रग-रग पहचानते है, अुस के प्रति चिढ टिक नही सकती। जिस के बारे मे हमे पूर्ण परिचय है, अुस का वलण, अुसका रुख हम अच्छी तरह से समझ सकते है, केवल बुद्धि से नही लेकिन हृदय से अुस के प्रति पिता की या भाअी को प्रेम-प्रेरित क्षमा जागृत होती ही है। यही कारण है कि अैसे महानुभाव किसी का भी द्वेष नही कर सकते।

अहिसा व्रत का प्रचार अितना हुआ है, कि अहिसा वृत्ति धारण करने की बात हम लोग समझ सकते है। अुस का पालन भी हो सकता है। लेकिन अद्वेष व्रत का अैसा नहीं है। अहिसा धर्म का पालन जैसे अुदारचरित महात्मा लोग कर सकते है, वैसे ही निर्वीर्य लोग भी अुसका पालन कर सकते है। कम-से-कम अहिसा की दुहाअी देकर अपनी कायरता को और अकर्मण्यता को ढँक सकते है। अद्वेष का अैसा नही है। मनुष्य अपने द्वेष को छिपा नही सकता। द्वेष करने से मनुष्य छोटा बनता है। फिर तो अुस की वह कमजोरी प्रगट होती ही है।

गाधीजी मे और जवाहरलालजी मे द्वेष का माद्दा ही नही था।

अिसी लिअे हम कहते है कि गाधीजी और जवाहरलालजी दोनो मे जीवन-दर्शन भिन्न होते हुअे भी दोनो की आत्म-शक्ति अेक-सी काम कर सकती थी ।

विश्वशान्ति के उपासक

भारत का सचमुच यह् बडा सौभाग्य है कि महात्मा गाधी के रास्ते स्वराज्य प्राप्त होते ही, भारत को विश्व के दरबार मे, अपना स्थान प्राप्त कराने के लिये, जवाहरलालजी के जैसा अेक अुदार-धी कुशल कर्णधार मिला ।

हरअेक देश के, अपने-अपने निजी गुणदोष होते ही है । हरअेक देश का भाग्य अुसके प्राचीन अितिहास से मर्यादित होता है । साथ-साथ अुसी अैतिहासिक काल मे, अुस राष्ट्र ने अगर किसी भव्य आदर्श का मनन-सेवन किया हो, तो अुस अितिहास-सिद्ध आदर्श के बल पर, वह राष्ट्र अेक अद्वितीय अुज्जवल भविष्य मे प्रवेश भी कर सकता है ।

महात्मा गाधी केवल भारत को ही नही, किन्तु अखिल जगत को प्रेरणा देने वाले युगपुरुष थे । हजारो बरस की भारत की जीवन-साधना के साथ, गाधीजी के हृदय का अैक्य था । अिसलिअे वे भारत की शक्ति का, और मिशन का साक्षात्कार कर सके थे ।

जवाहरलालजी की तैयारी दूसरे ही ढग की थी, हालाँकि अुनकी भारतभक्ति और विश्वप्रेम, गाधीजी से तनिक भी कम नही थे । जवाहर-लालजी भारत मे ही जनमे, यहाँ के समाज मे ही वे छोटे से बडे हुअे, किन्तु अुनकी शिक्षा-दीक्षा पश्चिम की थी । विश्व का अितिहास पश्चिम की आँखो से ही अुन्होने देखा था । विश्व की राजनीति और अर्थनीति का परिचय अुन्हे पश्चिम के द्वारा ही हुआ था । । अुस बाजू की अुनकी यह सारी पूर्व तैयारी, भारत के लिअे अिसलिअे लाभकारी सिद्ध हुअी, कि जवाहरलालजी को भारत की आत्मशक्ति का परिचय गाधीजी के द्वारा हो सका था ।

हरअेक जाति को अपना अेक खब्त होता है। भारत का खब्त है धर्म। अिसलिअे तो हमारे यहाँ दुनिया के सब प्रधान धर्म आ बसे है। हमारे सब के सब सामाजिक प्रयोग और पुरुषार्थ धर्म के नाम से ही हुये है। और हमारी सारी कमजोरीयाँ और कठिनाअियाँ भी अिन धर्मो की बदौलत ही है। अगर अिन धर्मो के छोड देने का भी हम सोचे, तो भी ये धर्म हमे छोडनेवाले नही है। बाबा कबल को छोडने को तैयार है, लेकिन कबल बाबा को नही छोडना। अैसा है यह बाबा-कबल का न्याय!

गाधीजी ने अिस परिस्थिति को पहचानकर सब धर्मो का परिचय पाया। और सबके प्रति आदर रखकर सवो को अपनाने की कोशिश की। अैसा करते अुन्होने अपनी अद्भुन शक्ति से अिन धर्मो को निचोडकर सब सब धर्मो मे रही हुअी सच्ची धार्मिकता का और आध्यात्मिकता का अित्र निकाला।

अिधर जवाहरलालजी ने अपने को सब धर्मो के जजाल से मुक्त रखा वह भी अेक जरूरी साधना थी अिसीलिअे तो जवाहरलालजी महात्माजी से भारत की आध्यात्मिकता का सच्चा शुद्ध रसायन अथवा अित्र पा सके।

सब धर्मो का और सब सस्कृतियो का यह सार अथवा रसायन क्या है? थोडे मे अिसको हम कह सकते हैं कि

(१) विश्व

(२) समस्त मानवजाति की मूलभूत अेकता।

(३) स्वार्थ, लोभ और अीर्षा और द्वेष का त्याग करके मानव-कल्याण के लिअे अुच्च भूमिका अूपर करने का आतर-राष्ट्रीय सहयोग।

(४) व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और आतर-राष्ट्रीय सम्बन्धो मे अत्यन्त आवश्यक अैसी साधनो की शुचिता और

(५) जहाँ अन्याय, अत्याचार और आक्रमणका प्रतिकार करना हो वहाँ प्रधानतया चारित्र्य के तेज-रूपी आत्मशक्ति का अुपयोग। जिसे गाधीजी सत्याग्रह कहते थे (और जिसे आज के लोग 'शातियुक्त क्रान्ति' के नाम से पहचानते है)।

भारत के आजाद होते ही, और स्वराज्य की बागडौर हाथ मे आते ही, जवाहरलालजी ने दुनिया के सब राष्ट्रो के दरबार मे, भारत सरकार के राजदूतालय खोले, और विश्व-मैत्री की, शान्ति की अुपासना की, और किसी गुट मे न फँसने की भारतीय नीति घोषित की।

यूँ तो बडे-बडे धर्माचार्य, अितिहासज्ञ और राजनैतिक तत्वज्ञ क्रान्ति की घोषणा और ताअीद हमेशा करते है लेकिन जवाहरलालजी की महत्ता अलग ही थी। भारत जैसे अेक समर्थ और सस्कृति-समृद्ध राष्ट्र के प्रतिनिधि बनकर वे दुनिया के सामने अेक राजपुरुष और युगपुरुष के नाते खड़े होकर बोलते थे। जवाहरलालजी की वाणी के पीछे अेक विश्व-मान्य राष्ट्र के सकल्प का और निर्धार का बल था।

यूँ तो हिटलर, स्टेलिन, चर्चिल और आअिजनहोवर जैसे सब के सब राष्ट्रपुरुष शान्ति की ही घोषणा करते थे। लेकिन दुनियाने जवाहर-लालजी के वचनो पर अेतबार किया और युद्ध विरोध की अहमीयत कबूल की।

अमेरिका के राष्ट्रपति जान्सन ने सही कहा कि 'विश्व को युद्ध की बला से मुक्त करना, यही होगा शान्ति-पुरुष नेहरू का सच्चा स्मारक।

जिस स्थान पर जवाहरलालजी का देह पवित्र अग्नि की मदद से पचमहाभूतो मे विलीन हो गया अुस स्थान को राष्ट्र हृदय ने शाति-वन का जो नाम दिया है, वह सब तरह से अुचित ही है। ओर यह भी अुचित है कि जवाहरलालजी की समाधि गाँधीजी की समाधि के नजदीक ही है।

युग पुरुष की भाग्यशालिता

सबो के मुँह से अेक ही बात निकलती है कि श्री जवाहरलालजी के चले जाने के साथ अेक युग का अन्त होता है । सब यह भी कहते है कि जवाहरलालजी ने शुरु से आजतक जो नीति दृढता से चलाई, वही भारत के लिअे हितकर है । क्योकि वह नीति भारत के समूचे अितिहास से फलित हुअी है । वह नीति भारत की सस्कृति के अनुसार ही है । और सबसे बडी बात तो, जवाहरलालजी की नीति हम लोगो के स्वभाव के साथ पूरा-पूरा मेल खाती है ।

जब जवाहरलालजी की नीति अिस तरह हितकर और स्थिर है और वही आगे चलानी है, तो अुनके साथ किस चीज का अन्त होकर नये युग का प्रारभ हो रहा है ?

अेक बात स्पष्ट है । गाधीजी के दिनो मे, हालाँकि वे हमेशा सब साथियो की राय लेते थे, और सब को सभालकर ही अपना काम चलाते थे, तब भी सब साथी गाधीजीकी राय समझकर अपना मन अक्सर अुसी के अनुकूल बना देते थे । जवाहरलालजी के बारे मे भी अैसा ही होता आया । जवाहरलालजी का मानस ही राष्ट्र का मानस होने के कारण अुन्ही की बाते सबको मान्य रहती थी । चन्द बातें बिल्कुल नयी हो, तो भी जवाहरलालजी की ओर से सूचना हुअी है, अिसीलिअे लोग मान जाते थे—अिस विश्वास से कि अुसी मे राष्ट्र का हित है ।

अेक के पीछे अेक अैसे दो महापुरुषो का नेतृत्व राष्ट्र को मिला, यह भारत का परम सौभाग्य है । अब जबतक अैसी ही कोटि का राष्ट्र पुरुष समूचे देश की बागडोर अपने हाथ मे न ले, तबतक सब को मिल-कर सोचना होगा और कसरत राय से बातें तय करनी होगी । अब किसी अेक का नही चलेगा, सबका मिलकर चलेगा ।

समूचे राष्ट्र की तैयारी के लिअे यही साधना अब अच्छी है । अिस-लिअे सब कहते हैं कि अेक युग पूरा हुआ । मै मानता हूँ कि भारन मे जो क्रान्ति शुरु हुअी है, और जो अपने ही ढग की है, अव जोरो से चलेगी । अुसे सभाल-सभाल कर आने देने के दिन अब नही रहे, क्रान्ति की पूर्व-तैयारी करने का काम गाधीजी ने किया था । आर्थिक और औद्योगिक क्रान्ति को युगानुकुल नया मोड देने का काम जवाहरलालजी ने किया । दोनो ने अेक तरह से क्रान्ति की रफ्तार बढाअी और दूसरी ओर से राष्ट्र का मानस अुस रफ्तार को सहन कर सके अिसलिअे अुसे कुछ रोका भी । अब परिस्थिति परिपक्व हुअी है । क्रान्ति की रफ्तार मे अपना निजी वेग आ गया है । अब राष्ट्र के कर्णधारो का समुदाय अुसे रोकने की कोशिश करेगा तो भी अुन की चलेगी नही । बाहर की दुनिया कोशिश करेगी कि भारत की नीति विशिष्ट गुट के लिअे अनुकूल हो । अुन गुटो का प्रभाव हम पर हुअे बिना रहेगा नही । लेकिन भारत का और दुनिया का भला अिमी मे है कि सब का प्रभाव मजूर करते हुअे, किसी अेक तत्र के 'अु गल मे हम फँस न जाये ।

श्री जवाहरलालजी ने गाधीजी से शाति की, विश्वमैत्री की और अलिप्तता की, दीक्षा ली थी । थोडे ही दिनो मे अुन्होने वह अपनी ही बना ली । और दुनिया की राजनैतिक परिस्थिति से वाकिफ होने के कारण अुन्होने वह नीति दुनिया के सदर्भ के लिअे अनुकूल बनायी ।

बडे-बडे राष्ट्रीय महत्व के अुद्योग भारत मे शुरू किये बिना भारत का आर्थिक सामर्थ्य बढेगा नही, दुनिया के साथ चलने के लिअे जो आधु-निकता जरूरी है, वह भारत मे आयेगी नही, यह देखकर गाधीजी के जीते जी अुन्होने नयी नीति चलायी । अुसमे अुनकी हिम्मत और अुनका स्वतन्त्र-दर्शन प्रकट हुआ । गाधीजी ने भी देख लिया कि देश को अुस रास्ते जाना है अिसलिअे अपना आग्रह छोडकर जवाहरलालजी को अुन्ही की पसन्द की हुअी दिशा मे राष्ट्र को ले जाते अुन्होने रोका नही ।

अपने आशीर्वाद ही दिये ।

गाधीजीकी रचनात्मक नीति को और सर्वोदयी अर्थनीति को व्यापक बनाने का काम श्री विनोबा भावे ने चलाया । और अुसमे भूदान, ग्राम-दान और शातिसेना के कार्यक्रम बढा के नयी जान डालने का मौलिक प्रयत्न भी अुन्हो ने चलाया । अिन दो गाधी-भक्तो ने अेक-दूसरे का विरोध कही भी नही किया, तनिक भी होने नही दिया । अिसी मे गाधीजी की अुदार शिक्षा का माहात्म्य सिद्ध होता है । तर्क की दृष्टि से परस्पर विरोधी दीख पडने वाली नीतियाँ समन्वयवृत्ति से परस्पर पोषक हो सकती है, यह बात राष्ट्र और दुनिया देख सके है । आगे जाकर अिन दो नीतियो मे समझोता हो सकेगा ओर राष्ट्र के लिअे अेक सार्वभौम नीति फलित होगी ।

'दूसरे के विचार मे भी काफी तथ्य हो सकता है और अुस रास्ते भी देश का थोडा-बहुत हित हो सकता है' अेसा समझने की अुदारता और नम्रता ही आस्तिकता का अेक स्वरूप है । वही समन्वय युग अब अपना काम करेगा ।

जवाहरलालजीकी तुनुक-मिजाजी सब जानते थे । वह क्षणजीवी होती है, यह भी सब जानते थे और अिसलिअे थोडा समय अुसका बुरा लगा तो भी सब साथी अुसे भूल जाते थे । काफी आग्रह करने के बाद अपनी बात छोड देना और राष्ट्र को स्वतत्र विचार करने का मौका देना, यह था जवाहरलालजी की नीति का अेक विशेष रूप । अैसी नीति वे ही चला सकते हैं, जिनका व्यक्तित्व विशाल है और जिनका अपने देश पर पूरा-पूरा विश्वास है ।

जवाहरलालजी के मन मे किसी के प्रति द्वेष कायमी घर नही कर सकता था, यह भी अुनकी अेक विशेषता थी । महानता का यह भी अेक विशाल लक्षण है ।

और जवाहरलालजी परम भाग्यशाली तो थे ही । मोतीलालजी जैसे

पिता का पुत्र होना, गांधी जी जैसे महात्मा के विश्वास का पात्र बनना और चालीस करोड जनता की भक्ति का भाजन बनना, मामूली भाग्य नही है। अशोक, अकबर औरगजेब और लार्ड कर्जन ये सब भव्य भाग्य के अधिकारी माने जाते है। जवाहरलाल जी का अधिकारी और प्रभाव अिन लोगो से कम नही था। और सारे विश्व के साथ साधे हुअे सपर्क की दृष्टि से तो जवाहरलाल जी का स्थान अिन से कुछ अधिक अूचा ही हो गया था।

अेशिया और अफ्रिका के अुदीयमान राष्ट्रो का वे प्रेरणा-स्थान बने थे। युरोप-अमरिका के वैभव-सपन्न देशो के कर्णधारो को जवाहरलालजी की अूनकी कामना, युद्ध टाल कर शाति की स्थापना करने का अुन का आग्रह, छोटे बडे सब व्यक्ति और राष्ट्रो के स्वातन्त्र्य की रक्षा करने का अुनका निश्चय और विश्वमगल्य के सर्वोच्चय आदर्श पर की अुन की निष्ठा यह सब-कुछ भारतीय सस्कृति के जैसा ही भव्य था।

लोग कहते है कि जवाहरलाल जी को मनुष्य की परख कम थी। लोगो पर विश्वास रखने मे वे धोका खा सकते थे। यह बात सही हो तो भी क्या ? मनुष्य अपने अिर्द-गिर्द जैसी दुनिया हो, अुसी से काम ले सकता है। विश्व मे काम करने वाली सब शक्तियो का अगर सच्चा परिचय है और अपने पर पूरा-पूरा विश्वास है, तो जैसे भी मनुष्य मिले अुनसे काम लेने की हिम्मत भाग्यशाली मनुष्य मे आ जाती है। सफलता और निष्फलता दोनो को मजूर रखके अुन मे से अपना रास्ता निकालने की तैयारी जिन की है, अुन्ही के लिअे यह दुनिया है।

आखिरकार व्यक्ति का पुरुषार्थ, और परिस्थिति का जोर अिन दोनो के बीच कभी सघर्ष और सहयोग चलता रहता है। यही तो विश्व का नाटक है। अैसे नाटक मे महान कार्य कर के दिखाना और अेक महान सस्कृति-समृद्ध राष्ट्र को अुन्नति के रास्ते ले जाना, यही तो भाग्यशाली व्यक्ति के पुरुषार्थ का लक्षण है।

सचमुच जवाहरलालजी ने अपने जमाने पर अपने व्यक्तित्व की मुहर लगाई और अितिहास विधाता की सोची हुई क्रान्ति का रास्ता खुला कर दिया। महात्मा जी ने सत्य और अहिंसामूलक, जो जीवन साधना राष्ट्रीय पैमाने पर शुरु की अुस साधना का व्यापक स्वरूप जवाहर लालजी ने विश्व के सामने खडा किया, और एक नास्तिक दुनिया को आस्तिकता की झाँकी करवाई। अिसी कारण राष्ट्रपुरुष जवाहर-लालजी काफी हद तक बिश्वपुरुष हो सके।

भारत-मूर्ति

भारत-मूर्ति जवाहरलालजी को गये अेक साल पूरा हो रहा है! अभी-अभी तो वे हमारे बीच थे! अुन को खोने का दु ख अभी बासी नही हुआ है। तो भी लगता है कि नेहरू-युग बहुत कुछ खतम हुआ है।

अब नेहरूजी का और अुन के समय का चिंतन करना अपरिहार्य हुआ है। नेहरूजी की का राज भले ही पद्रह-बीस बरस का हो, अुन का भारत पर और कुछ अश मे दुनिया पर कायमी असर हुआ है। आधुनिक भारत को बनानेवाले राष्ट्रपुरुषो मे और युगपुरुषो मे जवाहरलालजी ने नि सशय महत्त्व का स्थान प्राप्त किया है।

जवाहरलालजी ने अपनी युवावस्था मे ही दो भव्य-विभूतियो का प्रेम सपादन किया। महात्मा गाधी और कविवर रवीन्द्रनाथ। यूँ देखा जाय तो गाधी और टागोर दोनो की विभूति बिलकुल परस्पर भिन्न थी। लेकिन दोनो की महत्त्वाकाक्षा अेक-सी थी। दोनो की आध्यात्मिक प्रेरणा मे विशेष फरक नही था और कही-कही तीव्र मतभेद होते हुअे भी दोनो मे कितना सुन्दर अेकराग था! छोटे दिल के लोगो ने, दोनो के बीच कितना फर्क था अुसी की ओर ध्यान दिया। फर्क अितना स्पष्ट था कि अुसे समझने के लिअे कोअी गहरे ज्ञान की आवश्यकता नही थी। लेकिन ध्यान देने की बात तो यह थी कि दोनो का अेक दूसरे के प्रति प्रेमादर गाढा था। और दोनो का भारत पर जो असर हुआ, परस्पर पोषक ही रहा।

अब पडित जवाहरलाल नेहरू की विभूति अिन दोनो से बिलकुल भिन्न थी। तो भी नेहरू के मन मे अिन दोनो युगपुरुषो के प्रति अेक-सी असीम श्रद्धा थी। भक्ति तो थी ही। अभिरुचि के ख्याल से वे टागोर के

नजदीक थे। और क्रातिकारी बगावत मे वे गाँधीजी के अत्यन्त निकट थे। भारत को आतर-राष्ट्रीय दृष्टिकोण की दीक्षा देने मे और मानवता की शुद्ध अुपासना, करने मे नेहरूजी को अिन दोनो से अेक-सी प्रेरणा मिली थी।

आतरराष्ट्रीय दृष्टि, विश्व-समस्याओ का परिचय, मानवता की स्थापना और सफलता की चिता और विश्वशाति की अखण्ड अुपासना अिन सब बातो मे पडित जवाहरलाल नेहरू विश्व के राजनैतिक पुरुषो मे अग्रगण्य ही रहे। अिस मे अुन की प्रतिभा स्वयंभू थी और अिसीलिअे जबरदस्त सक्रामक भी थी।

भारत की आजादी, भारत की एकता, भारत-हृदय की आर्यता, और विश्वसेवा के लिये भारत का सामथ्य इन चीज़ो के लिये ही जवाहरलाल जीये और अिसी के लिये पुरुषार्थ करते-करते उन्हो ने अपनी देह छोडी। उन्होंने अपने बारे मे सही कहा है कि उन्हो ने भारत पर अखूट प्रेम किया, अमर्याद प्रेम किया, और भारतीय जनता से अुन्होने उतना ही नि सकोच प्रेम पाया।

लोग अुन की तुनकमिजाजी जानते थे। वेस्वय भी जानते थे। लेकिन अुन के मन म किसी के प्रति द्वेष या दुराव रहता नही था। अुन्हो ने कअी वार कबूल किया था कि 'मै मिजाज खो बैठता हूँ यह बात सही है,। लेकिन मै कभी हिम्मत नही खोता, हिम्मत हारता नहीं'। जवाहरलालजी की सारी खूबी अिस अेक वाक्य मे प्रकट होती है।

जवाहरलालजी जितने शॉति के अुपासक थे अुतने ही शक्ति के भी अुपासक थे। भारत को आज की दुनिया मे अगर जीना है और विश्व को सेवा करने का अपना अधिकार खोना नही है तो भारत को समर्थ बने बिना चारा ही नही। अितना वे जानते थे और यही चीज भारत के मन पर ठॅसाने की अुन्हो ने कोशिश की।

ज्ञान-प्रचार का सामर्थ्य हो, या लडाअी लडने का सामर्थ्य हो, विश्व की मदद करनी हो, या विश्व की सेवा लेनी हो , विज्ञान और यन्त्रोद्योग के विकास के बिना राष्ट्र समर्थ हो नहीं सकता यह थी अुन की दृढ श्रद्धा अिसलिअे अुन्होने पूरे वेग से, और कुछ जल्दबादी से भी, बडे-बडे अुद्योग और कलकारखाने शुरू किये। अिस कार्य मे उन्होने दुनिया के सब राष्ट्रो से पक्षपात-रहित मदद ली। और अुन की नीति भी अैसी सक्षपात-रहित थी कि परस्पर विरोधी बडे-बडे राष्ट्रो से वे अेक-सी मदद ले सके और शुरु मे भारत के प्रति सब का अविश्वास भले ही रहा हो, थोडे ही समय मे विश्व के सब राष्ट्रो का विश्वास और आदर वे प्राप्त कर सके। अुन के दुश्मन भी अुन की अुदारता ओर आर्यता पर विश्वास रखकर अुन से लाभ उठाते बाज नही आते थे। और नेहरू की खेल-दिली (sportsmanship)अैसी कि लोगो ने अुनकी भलाई से नाजायज लाभ उठाया तो भी अुन मे कडवापन नही आता था। दुनिया के सब कमबख्तो को क्षमा करना और अुन की बदी को भूल जाना अुन के लिअे स्वाभाविक था।

कोअी अेसा नही माने कि नेहरू जी भोले थे या परिस्थिति नही समझ सकते थे। अगर वे सचमुच गाफिल होते तो न अुस स्थान पर पहुँचते, जो उनको मिला, न राष्ट्र कर्णधार बन सकते। भारत जब तक परतत्र था हमारा सम्बन्ध केवल ब्रिटन के साथ ही था। आजाद होते ही भारत यकायक विश्व के दरबार मे जा पहुँचा। वहा पर भारत के लिअे योग्य स्थान पा लेना ओर विश्व के सब राष्ट्रो के साथ देखते-देखते घनिष्ट परिचय बाँधना भोले आदमी का काम नही था। गाधीजी ने मुक्त कठ से कहा था कि विश्व-परिस्थिति के बारे मे अपनी जानकारी जवाहरलाल जी से लेते अुन्हे सतोष रहता था।

मुसलिम लीग ओर पाकिस्तान को समझाने की और अुनके साथ प्रेम-सम्बन्ध बाधने की भारत ने पराकाष्ठा की। गाधी जी,

राजाजी, और नेहरुजी हमारे सर्वसमर्थ तीन राजनीतिज्ञ श्रेष्ठ पुरुष अुसमे हार गये, अितना तो कबूल करना ही चाहिये। लेकिन भारतने अपनी भलाअी, अपनी आर्यता और मुस्लिमो के प्रति अपनी बधुता छोडी नही अिसका हमे सतोष है, गौरव भी है। राजनैतिक हारजीत का अितना महत्व नही जितना राष्ट्रीय चारित्र्य का। आध्यात्मिक अितिहास का अनुभव अेक मुख से कहता है कि अन्त मे बुद्धियुक्त चारित्र्य की ही विजय होती है। चालबाजी की विजय भी निश्चित होती है किन्तु वह स्थायी नही होती। महाभारतकार ने थोडे मे कहा है 'अधर्मके रास्ते जाते तरक्की होती है, अधर्म के रास्ते अच्छी-अच्छी चीजे खूब मिलती हे, विरोधियो के अूपर अधर्मी लोगो को विजय भी मिलती है। लेकिन अधर्म का रास्ता लेने वाले की जडे सड जाती हैं।

वर्धति अधर्मेण नर, ततो भद्राणि पश्यति।

तत सपत्नान् जयति, समूलस्तुविनश्यति ॥

हमारे नेताओ ने अितना तो सभाल लिया है कि हमारी जडे सड न जायँ। कमजोर न हो जाये।

चीन के आक्रमण के बाद लोग कहने लगे कि नेहरूजी गफलत मे रहे। अुन्होने आत्म-रक्षा की तय्यारी पूरी-पूरी नही की। अितना तो सही है कि नेहरूजी ने चीन के नेताओ पर विश्वास किया अगर हमारे मन मे चीन के प्रति कोअी पाप नही था, तो चीन के प्रति हम अविश्वास क्यो करे? दुनिया का व्यापार विश्वास से चलता है। केवल अविश्वास से नही। लेकिन आत्मरक्षा की फौजी तय्यारी के लिअे जिस जमाने मे अमर्याद धनकी जरूरत होती है, लश्करी मदद अगर हमने विदेशो से ली होती तो हमारी आजादी टिक नही सकती। और अपने ही बल पर लश्करी तय्यारी करनी हो तो अुसके लिअे अुद्योग-हुनर बढाना यही अेकमात्र अुपाय रहता है। अिस दिशा मे नेहरूजी ने तनिक भी गफलत नही की। राष्ट्र गफलत मे रहा होगा। नेहरुजी नही। अेक ओर अुनकी श्रद्धा थी

—Wishing nobody aught but good
naught but good can come to me

"अगर हमने किसी का भी बुरा नहीं चाहा तो हमारा बुरा कभी होगा ही नही।" दूसरी ओर वे जानते थे कि जबतक राष्ट्र का सामर्थ्य पूरा बढा नहीं है, सबूरी से ही काम लेना चाहिये। युद्ध का विज्ञान कहता ही है कि लडना पडे तो मूठभेड का स्थान और मुहूर्त हम विरोधी को पसद करने नही दे। वह तो हमारे ही हाथ मे रहना चाहिअे।

हमारे जोशीले देशभक्त अितनी अेक बात पूरी-पूरी समझ सके तो भारत की नीति सर्वकल्याणकारी ही होगी।

कहते है कि नेहरू जी को आदमियो की परख कम थी। हो सकता है, बात सही हो। लेकिन अितने बडे राष्ट्र का सर्वांगीण विकास करने के लिअे आप विश्वास के साथ आगे बढ सकते है। फूँक-फूँककर कदम रखना सफलता का मार्ग नहीं है। सब तरह से पूरा सोचो, और भाग्य पर भी चद बातें छोडो। यही सिद्धान्त होता है भाग्यशाली लोगो का।

नेहरू जी भाग्यशाली थे अिसमे शक नहीं। गाधीजी और नेहरूजी का नेतृत्व जिसे मिला अुस भारत को अभी अपने ही पुरुषार्थ पर और सयानेपन के बल पर भाग्यशाली बनना है।

जवाहरलाल जी के बाद

करीब ग्यारह वर्ष पूर्व की बात है। सन १९५४ के अप्रैल मे मै जापान गया था। वहाँ कोबे शहर मे अेक भारतीय सज्जन के घर करीब पचास भारतीय लोग मुझ से मिलने अिकट्ठा हुए थे। अुन मे सिंधी, पजाबी सिख, गुजराती आदि अनेक प्रकार के लोग थे। अेक बहोरा भाअी थे । अेक महाराष्ट्रीय थे। भारत की वर्तमान स्थिति के बारे मे अनेक सवाल पूछे गये।

फिर, अैसी चर्चा मे हमेशा ही आनेवाला सवाल पूछा गया·· जवाहरलाल नेहरू के बाद भारत का राज चला सके अैसा कौन है ?

मैने कहा, "मै कालेज का विद्यार्थी था तब से अैसा ही सवाल सुनता आया हूँ। अुन दिनो बम्बअी के शेर सर फिरोजशाह महेता काग्रेस का नेतृत्व करते थे। देशभक्तो मे अुन की धाक बहुत था। गाधी जी अुन के पास सलाह लेने ज'ते थे। लोग कहते थे कि सर फिरोजशाह के जैसा दूसरा नेता कहा से मिलेगा ? अुन का वक्तृत्व था ही वैसा अप्रतिम।

लेकिन देखते-देखते नामदार गोखले ने अुन का स्थान ले लिया। गोखले अच्छे विद्वान और देशभक्त तो थे ही। अुन्हो ने अपना सारा जीवन राष्ट्रसेवा को अर्पण किया था। अग्रेजी भाषा पर अुनका असाधारण प्रभुत्व था। अुन के भाषणो मे मीठा अुननय था। Sweet reasonableness था। आर्थिक सवालो का अुनका अध्ययन गहरा था। लोग कहने लगे, गोखले है तो जवान, लेकिन अिन के पीछे अिन के जैसा त्यागी वक्ता और कुशल नेता मिलने वाला नही है।

लेकिन अुन से भी अधिक तेजस्वी नेता राष्ट्र को मिले 'लोकमान्य' अन्होने जेल के कष्ट भी सहन किये थे। सामान्य जनता पर अुनका

प्रभाव असाधारण था। अुन की स्वराज्यनिष्ठा अप्रतिम थी। लोगो ने कहना शुरू किया तिलक के बाद मे अधकार ही छा जायेगा। है कोअी अुन के जैसा देशभक्त ?'

भगवान को करना था, लोकमान्य के जाते ही अुन का स्थान महात्मा गाँधी ने ले लिया और दुनिया चकित हो गयी। दुनिया कहने लगी अैसे नेता तो हजारो वर्षो मे अेक ही भेजे जाते है।

गाँधीजी के बाद देश को कौन सँभालेगा ? अिस सवाल का जवाब गाधीजी ने ही दे दिया। गाधीजी तो परम-भागवत अीश्वरनिष्ठा के प्रत्यक्ष मूर्ति थे । और जवाहरलालजी केवल बुद्धिवादी, भगवान का नाम तक न ले । बचपन से ही अग्रेजी सस्कृति मे पले हुअे। भारतीय सस्कृति की खूबी अुन को ढूँढनी पडी। अैसे 'नास्तिक को गाधीजी ने अपना अुत्तराधिकारी बनाया। गाधीजी जानते थे कि यह 'नास्तिक'। असख्य अीश्वरभक्तो मे अधिक और ठोस आस्तिक है। और भारत का भाग्य अुन के हाथ मे सुरक्षित है।

स्वराज्य मिला तब देश की बागडोर जवाहरलालजी ने सँभाली। अब आप पूछते है कि जवाहरलालजी के बाद भारत का राज्य कौन सँभालेगा ? मैं कहता हूँ कि भारत-भाग्यविधाता भगवान सोया हुआ नही है। जवाहरलालजी काफी तगडे और प्राणवान हैं। वे थक जायें अुस के पहले दूसरे किसी को भगवान खडा कर ही देगे। मुझे अिस बिषय मे शका या चिता है ही नही।"

तब किसी ने पूछा कि, 'आप क्या मानते हैं, श्री विनोबा अुन का स्थान लेगे ? मैने कहा, 'हरगिज नही। दोनो अपने-अपने ढग के निराले व्यक्ति हैं। विनोबा का अपना स्वतन्त्र स्वयभु स्थान है। वे अकेले ही सेवा करते रहेगे और जनता को अूँचा अुठाअेंगे। राजनीति में और सरकारी तन्त्र मे अुन के लिअे स्थान नही है। अुन का काम स्वतन्त्र ढग से पनपेगा।'

यह सुन कर अेक पजाबी भाअी ने कहा कि, "जवाहरलालजी का स्थान ले सके अैसा कोअी आदमी आसमान से थोडा ही टपकेगा ? आज भी कही वह काम करता ही होगा। हम मानते है कि आप सरीखे लोग अुसे जवाहरलालजी के अुत्तराधिकारी के तौर पर पहचानते भी होगे। असलिअे हमने आप से पूछा।"

मैंने कहा कि अैसे तो अेक से अधिक है। कौन आगे आयेगा आज कहना मुश्किल है। लेकिन मै मानता हूँ कि जवाहरलालजी के निवृत्त होने का समय आयेगा अुस के पहले भारत की ही नही बल्कि सारी दुनिया की राजनैतिक स्थिति बदल गयी होगी। और जीवन-मूल्य भी आज के जैसे नही रहेगे।

'जवाहरलालजी के बाद कौन ?' अैसा सवाल और जगह भी मुझसे पूछा गया था, तब किसी ने कहा कि आज जो छोटे बडे लोग भारत का नेतृत्व कर रहे है अुनमे से किसी की अूँचाअी हम अितनी नही देखते जो जवाहरलालजी का स्थान ले सके। प्रजाराज्य है तो कोअी-न-कोअी आदमी जवाहरलालजी की जगह आ ही जायगा। लेकिन क्या गद्दी पर बैठते ही आदमी मे वह शक्ति आ सकती है ? शक्ति तो आन्तरिक ही होनी चाहिअे।

अैसे सवाल के पीछे की अश्रद्धा देखकर मै धैर्य खो बैठा। अुत्तेजित हो कर मैने कहा—वेदकाल मे जैसे पुरुष ॠषि थे वैसे अेक स्त्री ॠषि भी थी—'वागाँभृणी'। वह अपने को ही राष्ट्रदेवता मानकर कहती है,

अह राष्ट्री सगमनी चिकितुषी प्रथमा यज्ञियाना।
य कामये त त अुग्रं क्रृणोमि, त ॠषि, त सुमेधाम्॥

"मै राष्ट्रदेवता जिस किसी को पसन्द करती हूँ (यं कामये) अुसे मैं तेजस्वी (अुग्र) बनाती हूँ। अुसे ॠषि की शक्ति देती हूँ और अुसे बुद्धि-

मान बनाती हूँ ।" भारत की जनता जिसे राजगद्दी पर बिठाअेगी अुसे भारतमाता के आशीर्वाद से सब शक्तिया मिलनेवाली ही है। जब श्री० लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमत्री बने तब चन्द लोग अुन मे कोअी अूँचाअी न देख सके। बाद मे वे ही लोग खुश हुअे और सन्तुष्ट भी हुअे। मै कहता हूँ, हम बार-बार श्रद्धा क्यो खोवे ?

— o —